

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180105

UNIVERSAL
LIBRARY

—4469—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H83/SS3D

Accession No. H 2799

सेन आचार्य-चतुर्सेन
दा विनार

Book should be returned on or before the date last marked below

दो किनारे

आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक



द्वितीय संस्करण

सितम्बर १९५६

मूल्य—तीन रुपया आठ आना

★

मुद्रक

राष्ट्रभाषा मुद्रणालय

लहरतारा

बनारस—४

दो सौ की बीबी

१

केवल एक ही दिन की बीमारी से रमाशङ्कर की पत्नी का देहान्त हो गया। रमाशङ्कर अपने ग्यारह वर्ष के पुत्र राजीव को हृदय से लगाकर आँसू बहाते हुए घर लौट आया। पिता पुत्र ने बहुत बार बहुत आँसू बहाये, रमाशङ्कर के शुष्क व्यवहार और कर्कश स्वभाव के कारण पास-पड़ोसी बहुत कम उसके पास आते थे। मित्रों का भी उसे अभाव था। अपने जीवन में उसने कभी इन बातों की परवा भी नहीं की थी। अपनी पत्नी का महत्त्व भी उसने कभी नहीं समझा। परन्तु अब, पत्नी के एकाएक मर जाने से इसने अपने जीवन की शून्यता का थोड़ा बहुत अनुभव किया। पत्नी के बिना घर की अव्यवस्था भी उसे खटकने लगी। परन्तु वह निरुपाय था। उसका स्वभाव ही कुछ अक्खड़ और रूखा था, पुत्र राजीव के प्रति उसके मन में थोड़ा स्निग्ध भाव अवश्य था और अब पत्नी के मर जाने के बाद वह उसके प्रति थोड़ा सद्य भी हो गया था, परन्तु उसके वास्तविक स्वभाव की

रुखाई वैसी ही बनी थी। काम-काज से थका हुआ जब वह घर आता—तो उसे बहुत सूनापन अनुभव होता था और वह उस सूनेपन को पुत्र से बातचीत करके दूर करना चाहता था, परन्तु उसकी भी बातचीत बहुत जल्द खत्म हो जाती थी। प्रायः वह एकाध प्रश्न करने के बाद मौन हो जाता या खीझकर बक-भक करने लगता। फिर भी इतना तो अवश्य था कि—वह अब राजीव के लिये माँ और पिता दोनों ही के स्थान की पूर्ति करने लगा था, वह कभी-कभी स्नेह की भीगी हुई आँखों से पुत्र को देर तक देखता रहता, वह यदि पिता के देर से आने के कारण बिना खाए-पीए सो जाता तो उसे जगाकर कुछ खिलाता-पिलाता। इस काम में यदि कुछ उलझन भी होती तो वह जल्दी खीझता नहीं था, इतनी सहन-शक्ति उसमें उत्पन्न हो गई थी। राजीव भी पिता के रूखे और लापरवाह व्यवहार को सह गया था, माँ के अभाव को भी। वह निरीह भाव से जो मिल जाता वही खा-पीकर स्कूल चला जाता, वहाँ से लौट कर मनमौजी भटकता-फिरता और फिर थक कर सो जाता। रमाशङ्कर दिन भर कड़ा परिश्रम करके जब घर लौटता तो थक जाने पर भी कुछ खाने-पीने का आयोजन करता और पहिले पुत्र को जगा उसे अवश्य ही कुछ खिला-पिलाकर सुलाता, पीछे आप खाता। इस प्रकार पत्नी की मृत्यु होने पर पुत्र के साथ एकाकी रहने के कारण उसके रूखे-सूखे हृदय में स्नेह और ममता का एक श्रृङ्खुर हरा होने लगा था। उसकी आँखों में और व्यवहार में सदैव और स्नेहशील होने के लक्षण व्यक्त होने लगे थे।

दुर्भाग्य से वह गाँव के जिस भाग में रहता था वह भी एकान्त था। उसके पास थोड़ी-सी पैत्रिक भूमि थी। एक छोटा-सा घर भी था। वह घर तो अब अव्यवस्था का एक उदाहरण ही बन गया था, पास-पड़ोस का कोई ही व्यक्ति उससे मिलने आता। वह भी बिना काम किसी से नहीं मिलता था। पत्नी की मृत्यु के बाद हँसता हुआ तो वह

कभी देखा ही नहीं गया। ऐसा प्रतीत होता था कि—जैसे उसके स्नेह, ममता, और कार्यरत होने की भावना और निःसङ्ग जीवन ने एक समष्टि के रूप में उसमें एक स्थिर जड़ता ला दी थी, परन्तु यह जड़ता केवल उसके व्यवहार में थी, काम-काज में वह आलस्य नहीं करता था। वह कभी रोगी नहीं होता था, काम को पीछे नहीं छोड़ता था, किसी काम से थकता नहीं था। अब जो पुत्र के प्रति उसके मन में ममता का अङ्कुर उगा या यों कहना चाहिये कि अपने सून और निःसङ्ग जीवन को वह अपने में स्पर्श कर गया—इससे वह कभी-कभी काम-काज के लिये आते-जाते पुत्र को साथ रखने लगा। उससे बातचीत करने की मात्रा में भी वृद्धि हुई। धीरे धीरे ऐसा हुआ कि ग्यारह वर्ष का पुत्र और पैंतीस वर्ष का पिता—पिता पुत्र न रहकर मित्र के—घनिष्ठ मित्र के रूप में परिवर्तित होते गये। वे बहुधा परस्पर नित्य जीवन में आनेवाली छोटी-छोटी बातों पर सलाह-मश्वरे करते, तर्क-वितर्क करते और कभी-कभी हँस भी लेते थे। इस प्रकार वह धकेल-धकाल कर अपने जीवन के सूनपन को दूर करने की चेष्टा करने लगा था, परन्तु इसी समय न जाने कहाँ से आकर इतने दिन बाद पत्नी की स्मृति फिर से नई होंकर उसे व्यथित करने लगी। बहुधा जब वह पुत्र के साथ एक ही शैया पर आकर सोता तो दिन भर की थकावट से चूर रहने पर भी वह एकाएक सो नहीं सकता था, वह बड़ी देर तक दीपक की टिमाटिमाती लौ में अपनी पत्नी का मुख देखता, उसके जीवनकाल के सुखों को यत्न से स्मरण करता और फिर एक ठण्डो सौँस खींचकर पुत्र को कस कर हृदय से लगाकर सो रहता था। परन्तु कभी-कभी इतना यथेष्ट नहीं होता था, तब वह शैया से चुपचाप दबे पैर उठकर, जिससे पुत्र की नींद न खुल जाय, पत्नी के बक्स को खोलकर उसके वस्त्रों को, उसके व्यवहार की वस्तुओं को देखा करता, धीरे-धीरे इन वस्तुओं के प्रति उसके मन में आसक्ति, ममता और प्रिय भाव इतना

बढ़ा कि वह आँसू बहाते हुए बहुधा उन्हें हृदय से लगा सुख और शान्ति की अनुभूति करता था। और इसका परिणाम यह हुआ कि उसका मन नरम होने लगा और उसमें सहृदयता के कुछ लक्षण भी व्यक्त होने लगे, जिसका एक मात्र केन्द्र उसका पुत्र राजीव ही था। क्योंकि उसका कोई भी हित्-मित्र-सम्बन्धी, सहायक साथी और था ही नहीं। और न उसने कोई उत्पन्न ही किया था।

इसी प्रकार उसके मध्य जीवन के नीरस, एकाकी, सूने और असुखी दिन बीतते चले गये।



एक दिन वह एक घोड़ा खरीदने पड़ोस के एक गाँव में गया। बचपन में वह घोड़े की सवारी का शौकीन था। उसके पिता के पास एक बूढ़ा घोड़ा था जिस पर चढ़ कर बहुत बार अपने बालकाल में उसने गाँव से पास के कस्बे में सवारी का निर्द्वन्द्व आनन्द लूटा था। अपने उस आनन्द का वर्णन वह अपने पुत्र से बहुधा किया करता था। यही एक ऐसी बात थी कि जिसे वह पुत्र के साथ उत्साह पूर्वक करता, वह रस ले-लेकर कहता—“राजीव, जब मैं तेरे बराबर था तो घोड़े पर चढ़ता था।” तो राजीव उससे भी अधिक रस इसमें लेता और कहता—तो बापू, एक घोड़ा मेरे लिये ला दो। पुत्र की इस वासना पर पिता के होठों पर मुस्कान फैल जाती, उसे सम्भवतः अपने बाल काल की सुखद स्मृति छू जाती, वह आनन्द विभोर होकर कहता—ला दूँगा, तू थोड़ा और बड़ा हो जा। बूढ़ा घोड़ा नहीं लाऊँगा, ऊँची रास का बड़िया लाऊँगा। फिर वह अधिक उत्साह

अपने बाल काल की विविध प्रकार की घुड़सवारी की घटनाएँ सुनाता था। कब घोड़े ने उसे गिरा दिया था। किस प्रकार वह उसे दौड़ा था। अन्ततः उस घोड़े के मर जाने से वह कितना दुःखी हुआ था। इन सब बातों को कहते-सुनते-इतने दिन बाद जैसे अब वह नये सिरे से उस घोड़े के अभाव को अनुभव करने लगा, उसके मन में पुत्र से अधिक घोड़ा खरीदने की वासना उत्पन्न हो गई। आते-जाते लोगों से “कहीं कोई अच्छा घोड़ा बिकने वाला है क्या?” यह पूछने लगा। एक दिन उसने सुना—पड़ोस के गाँव में एक घाड़ी बिकाऊ है। मूल्य दो सौ रुपया है। उस घाड़ी को खरीदने का उसने पक्का इरादा कर लिया, फसल बेच कर उसने रुपया इकट्ठा किया। फिर एक दिन उसने पुत्र से कहा—‘राजीव, कल सुबह हम लोग घोड़ी खरीदने उस गाँव चलेंगे।’ राजीव सुन कर बहुत खुश हुआ, उस दिन बहुत रात तक दोनों पिता-पुत्र घोड़ी के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें करते रहे, बातें करते ही करते दोनों सो गये।

दूसरे दिन प्रभात ही में दोनों पिता-पुत्र उस गाँव की ओर चले। गाँव कुछ अन्तर पर था, वहाँ पहुँचते पहुँचते दोपहर हो गया। मार्ग में घोड़ी ही की बातें होती रहीं। राजीव यह निर्णय कर लेना चाह रहा था कि—वापसी में घोड़ी पर चढ़ कर कौन आवेगा, राजीव या रमाशंकर? रमाशंकर कहना—‘तू इतनी बड़ी घोड़ी पर चढ़ कैसे सकेगा? मैं सवार होकर तुम्हें आगे बैठा लूँगा। परन्तु राजीव अपने इस असामर्थ्य को स्वीकार नहीं कर रहा था, उसने कहा—‘नहीं-नहीं मैं अकेला ही चढ़ूँगा। और उसे दौड़ाऊँगा।’

गाँव में आकर उन्होंने घोड़ी देखी, उसे पसन्द किया। जिस गृहस्थ के घर घोड़ी थी, वहीं विश्राम किया। घोड़ी के मालिक ने कहा—‘अब खाकर थोड़ा सुस्ता लो। धूप कम होने पर जाना। घोड़ी का मूल्य दो सौ रुपया तय हो गया। रमाशंकर निश्चिन्त

होकर चारपाई पर पड़ रहा और राजीव घोड़ी के चारों ओर चक्कर काटने लगा ।

इसी समय एक युवती सिर पर जल का घड़ा भर कर आई । रमाशंकर ने उसे देखा, युवती की आयु बीस-बाईस वर्ष की थी, उसका रंग गोरा, बदन छुरहरा, आँखें काली और बाल घुँघराले थे । वह साधारण वस्त्र पहने थी । उस युवती को देख कर उसे एकाएक पत्नी की याद आ गई । साथ ही इस गृहस्थ के घर की चहल-पहल पर भी उसका ध्यान केन्द्रित हुआ, वह सोचने लगा—ओह, इसकी अपेक्षा मेरा घर कितना सूना है । वह यह सोच ही रहा था कि वह युवती फिर आई, इस बार उसने घोड़ी को घास डाली, उसे प्यार की थपकी दी, घोड़ी के निकट घूमते हुए राजीव से एकाध बात भी की । राजीव उसे यह बताने से न चूका कि वह घोड़ी अब उसकी है । रमाशंकर यह सब देखता रहा । युवती भीतर चली गई ।

भोजन के समय भी युवती आई, उसने रमाशंकर और उसके पुत्र को भोजन कराया । उसका आग्रह और यत्न, तथा राजीव के प्रति सदय भाव देख रमाशंकर का ध्यान उस युवती की ओर और भी आकृष्ट हो गया ।

भोजन के बाद जब घर का स्वामी घोड़ी की बात चीत करने, उसके पास बैठा तो बात घोड़ी की नहीं—युवती की प्रारम्भ हुई । रमाशंकर ने पूछा—

“यह औरत कौन है”

“कौन, मालती की बात कहते हो, यह भी साहेब, एक आफत है”

“आफत कैसी ?”

“अब आप से क्या कहूँ, दूर के रिश्ते की भाँजी है । घर में कोई नहीं रहा, ले आना पड़ा, खिलाना पड़ रहा है, क्या किया जाय ?”

“क्या ब्याह नहीं हुआ ?”

“हुआ था, परन्तु उन्होंने छोड़ दिया । बहुत दिन हुये”

“तो फिर ब्याह कर दीजिये, उम्र तो अधिक नहीं है”

“अधिक क्या ? बीस बाइस बरस की होगी । पर ब्याह क्या हँसी खेल है ?”

“दिक्रत क्या है ? क्या पिछले ससुरालवाले भगड़ा करेंगे ?”

“नहीं, उनका तो कुछ भय नहीं है”

“तब, क्या वह राजी नहीं होती ?”

“उसकी राज़ी नाराजी की बात नहीं है साहेब, पर ब्याह करेगा कौन ?”

“क्या उसमें कोई ऐब है ?”

“ऐब क्या, सनकी है”

“सनकी !”

“हाँ, मनमौजी है । पर काम धन्धे में चौकस है ।” गृहपति ने कनखियों से रमाशंकर को देखा । फिर थोड़ा ठहर कर कहा—

“आपकी घर वाली भी तो नहीं रही न ?”

“हाँ, तीन साल हुये वह मर गई”

“तब लड़का बेचारा बड़ी तकलीफ़ पा रहा होगा”

“सो तो है, पर क्या किया जाय”, रामाशंकर ने टण्डी सोंस ली । पुत्र की ममता और पत्नी की याद ने उसे विह्वल कर दिया । गृहस्थ ने कहा—

“आपने शादी क्यों नहीं की ? ऐसी कुछ ज्यादा उम्र तो आप की है नहीं ।”

रमाशंकर को जवाब देते नहीं बना । वह पत्नी की स्मृति को ताजा कर रहे थे । गृहस्थ ने फिर कहा—“घर पर कोई औरत है ?”

“नहीं”

“तब कैसे चलता है”

“दिक्कत तो है, सोचता हूँ घर को और राजीव को सम्हालने वाली कोई औरत मिल जाय तो नौकर रख लूँ।”

“नौकर ? नौकर क्यों ? ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?”

“ब्याह क्या करूँगा ?” रामाशङ्कर ने एक टण्डी साँस ली। गृहस्थ ने कहा—

“मालती एक ऐसी लड़की है, यदि उसकी सनकीपन की आदत का ख्याल न किया जाय तो आपके घर को और राजीव को वह अच्छी तरह सम्हाल सकती है।”

“परन्तु क्या आप यह पसन्द करेंगे कि वह मेरे यहाँ नौकरी करे ? फिर अकेला घर, कोई दूसरी औरत भी तो नहीं।”

“परन्तु नौकरी क्यों ? आप मालती से शादी क्यों नहीं कर लेते ?”

“मालती से शादी ?”

“इसमें आश्चर्य का क्या बात है, आप चाहें तो मैं खुशी से इजाजत दे सकता हूँ ?”

“पर, वह क्या राजी होगी ?”

“जरूर होगी।”

“किन्तु”

“किन्तु क्या ?”

“मुझे तो विवाह नहीं करना है, घर की व्यवस्था को एक औरत मिल जाय वस ?”

“अरे भाई, विवाह में दोष क्या है, मालती से ब्याह करके आपको सुख ही मिलेगा।”

“क्या वह घर-गिरस्ती का सब काम सम्हाल लेगी ?”

“वह इतनी मिहनती लड़की है कि चार औरतों के बराबर अकेली काम करती है।”

“तो आप उसकी शादी करने को तैयार हैं ?”

“क्यों नहीं, सिर्फ एक बात है।”

“क्या ?”

“उसपर मेरा कुछ खर्च हुआ है।”

“कितना ?”

“दो सौ रुपया।”

“वह रुपया आप लेना चाहते हैं ?”

“क्या यह अधिक है ?”

“यह बात नहीं—आप दो सौ रुपया लेकर मालती की शादी मुझसे कर देंगे ?”

“निश्चय।”

“कब ?”

“आप चाहें तो आज ही ?”

“क्या आज ही ?”

“आप समझते ही हैं कि ऐसे कामों में धूम-धाम की कोई आवश्यकता नहीं होती, फिर ‘तेरी-मेरी राजी’—क्या करेगा काजी”। गृहस्थ ने ही-ही करके हँस दिया।

कुछ देर तक रमाशङ्कर सोचते रहे। फिर बोले—“जरा उसे बुलाइये ?”

मालती आकर सामने खड़ी हो गई। रमाशङ्कर ने उसे ऊपर से नीचे तक देखकर कहा—इससे पूछिये। गृहस्थ ने पूछा—मालती, तुम्हारी इनके साथ शादी हो रही है “तुम्हें स्वीकार है न।”

मालती बोली नहीं। चुपचाप खड़ी रही। गृहस्थ ने कहा—“मैंने आपसे कहा था न, कि वह ‘ना’ न कहेगी।”

“पर उसने हाँ भी तो नहीं कहा।”

गृहस्थ ने भौंह टेढ़ी करके कहा—“बोलती क्यों नहीं मालती ?”

इस बार भयपूर्ण दृष्टि से मामा की ओर देखकर उसने कहा—
“जैसी आपकी इच्छा।”

“तुम मेरे घर की ठीक-ठीक व्यवस्था कर सकोगी ?”

“जी।”

“राजीव, की सार सम्हाल”

मालती ने स्निग्ध दृष्टि से राजीव को देखकर मुस्कुरा दिया।

“तो तुम मेरे साथ रहने को राजी हो ?”

मालती ने धीरे से कहा—

“जी।”

रमाशङ्कर ने फिर गृहस्थ से कहा—“आप ने कहा था—आज ही।”

“जी हों, आज ही, पर रुपये....”

“लीजाये”, रमाशङ्कर ने दो सौ रुपयों के नोट गृहस्थ को थमा दिये। मालती घर में चली गई। नोटों को गिनकर गृहस्थ ने कहा—
ठीक है, मैं अभी बन्दाबस्त करता हूँ। परन्तु घोड़ी ?”

“अब घोड़ी नहीं खरीदी जा सकती ?”

“कुछ हर्ज नहीं, उसे आप जब चाहें ले जा सकते हैं।”

रमाशङ्कर बोला नहीं। गृहस्थ घर में गये। और उसी सन्ध्या के धूमिल प्रकाश में मालती का विवाह रमाशङ्कर के साथ गाँव के एक पण्डित ने बीस मिनट में करा दिया। उसे एक रुपया दक्षिणा देकर रामाशङ्कर ने कहा—“तो मैं अभी जाऊँगा।”

“अभी क्यों ? प्रातःकाल जाइये।”

“नहीं, रात उजाली है, हम समय पर पहुँच जाँयेंगे।”

वे एक दम उठ खड़े हुये। अपने वस्त्रों की पोटली उठाकर मालती उनके पीछे चली।

राजीव ने कहा—

“और घोड़ी ?”

“अभी घोड़ी नहीं खरीदी जा सकती, यह औरत खरीदी है।”

“इसका क्या होगा बापू ?”

“बहुत काम करेगी, खाना पकायेगी, कपड़े धोयेगी, तेरी सार
सम्हाल करेगी।”

परन्तु राजीव को घोड़ी के स्थान में एक अपरिचित औरत का
खरीदा जाना बिल्कुल पसन्द नहीं आया।

वह रोषपूर्ण दृष्टि मालती पर डालता हुआ उदासीन भाव से पिता
के पीछे-पीछे चलने लगा।



३

रमाशङ्कर के घर आकर मालती ने देखा, वह घर नहीं हैं, पुराने सामान का एक गोदाम है। सब कुछ बेतरतीबी से बिखरा पड़ा था। महीनों से, यह कहना चाहिए वर्षों से, घर की सफाई नहीं हुई थी। परन्तु यह सब देखकर मालती घबराई नहीं। वह कड़ी मिहनत करने की अभ्यस्त थी। गन्दगी और अव्यवस्था वह सहन न कर सकती थी। रमाशङ्कर और राजीव के विचारों और मनोविकारों पर ध्यान देने का उसे समय ही न मिला। विवाहिता पत्नी होने की प्रसन्नता और प्रतिष्ठा की भावना से वह उत्साहित थी। उसका अभी तक का सारा ही जीवन तिरस्कृत-विफल नीरस और अन्धकारमय बीता था। माता-पिता कब मर गये थे—यह उसे याद भी न था। उसने उनके स्नेह की एक बूँद भी न पाई थी। सम्बन्धियों की उपेक्षापूर्ण निगरानी में पलकर यौवन की छ्योढ़ी पर पैर रखते ही उसने जो वैवाहिक सौभाग्य पाया, उसपर प्रारम्भ ही में बिजली पड़ गई थी। बहुत यत्न-

सेवा और सहनशक्ति का परिचय देने पर भी वह सुसराल में निरन्तर पिटी, फिर भी पति का उसे कोई सुख नहीं प्राप्त हुआ। वह चण्डू का दम लगाकर बहुत रात गये जब घर में आता तो गाली और मारपीट के सिवा जबतक जागता कोई दूसरा काम जानता ही न था। मास्रिंती अन्ततः और अधिक सहन न करके वहाँ से भागी। बहुत मामला मुकदमा हुआ, अन्ततः वहाँ से उसने छुट्टी पाई। अघाकर सौंख ली और अब इस दूर के मामा की रोटियाँ खा रही थी, जिसने उसे बिना सक्कोच दो सौ रुपये में बेच दिया। उसने सोचा—घोड़ी के दाम तो अन्यत्र भी उठ आवेंगे, परन्तु इस लड़की के दाम का यह अलभ्य समय है।



४

बहुत रात गये रमाशङ्कर अपनी नव परिणीता दुलहिन को लेकर घर पहुँचा। परन्तु जैसे वह यह भूल ही गया कि एक अधिकारपूर्ण प्राणी आज उसकी भङ्ग गृहस्थी को परिपूर्ण करने आया है। मालती ने उड़ती नजर से घर को देखा। सबसे प्रथम उसे खाने-पीने की चिन्ता हुई। रसोई घर में जाकर उसने जो कुछ सम्भव था भोजन बनाया। जब वह भोजन का थाल लेकर रमाशङ्कर के पास गई, तबतक दोनों पिता पुत्र एक-एक झपकी ले चुके थे। मालती ने उन्हें जगाकर भोजन करने को कहा—नींद में खलल पड़ने से रमाशङ्कर पहिले तो खीझ उठा, पीछे भोजन पाकर सन्तुष्ट हो गया। राजीव को भी जगाकर उसने भोजन कसया, भोजन करके वह फिर सो गया। मालती कहाँ सोवेगी, तथा उसकी क्या आवश्यकताएँ हैं इस पर उसने विचार ही नहीं किया।

कुछ भोजन कर लेने पर मालती ने जब सोने की व्यवस्था सोची

तो वह बड़े असमञ्जस में पड़ गई। सङ्कोचवश रमाशङ्कर से कोई प्रश्न ही न कर सकी। घर में केवल दो ही बिछौने थे, एक पिता का, दूसरा पुत्र का। मालती ने पुत्र के बिछौने पर अपना अधिकार जमाया। राजीव अभी तक बात करते-करते पिता के पास सो गया था, अब उसने आकर देखा तो अपने बिस्तर पर मालती को सोते देख उसने खीझ कर कहा—

“मैं कहाँ सोऊँगा ?”

“यह मैं क्या जानूँ ?”

“यह मेरा बिस्तर है, छोड़ो।”

“और मैं कहाँ सोऊँ ?”

“यह मैं क्या जानूँ।”

“तो मैं यहीं सो रही हूँ, तुम पिता जी के पास जाओ।”

राजीव ने हठ किया। परन्तु मालती ने उसपर ध्यान नहीं दिया। वह करवट फेर कर सो रही। लाचार राजीव ने पिता के पास आकर शिकायत की। रमाशङ्कर ने उसे अपने पास सुला लिया।

भोर होते ही मालती काम में जुट गई। उसे यह नहीं मालूम था कि रमाशङ्कर कब काम पर जाता और कब घर आता है, तथा उसके खाने-पीने का क्या समय है, रमाशङ्कर और उसका पुत्र दोनों ही अभी पड़े सो रहे थे, मालती ने चूल्हा जलाकर कुछ कलेवा बनाया, फिर हाथ-मुँह धो थाँड़ा कलेवा कर रमाशङ्कर और उसके पुत्र के लिये कलेवा रख घर की सफाई और व्यवस्था में जुट गई। रमाशङ्कर ने उठकर जब उसे काम में संलग्न देखा तो सन्तोष की साँस ले नित्यकर्म से निपट अपने काम पर जाने लगा, तभी मालती ने टोंककर कहा—
कलेवा करके जाओ, और जल्दी से राजीव के हाथ-मुँह धुला पिता पुत्र दोनों को कलेवा करा दिया। फिर उसने रमाशङ्कर से बात-चीत की—

“दोपहर को खाना कब खाते हो ?”

“दोपहर को नहीं—शाम को ।”

“दोपहर को क्यों नहीं ?”

“काम छोड़कर आना पड़ता है, ऐसी ही आदत है ।”

“यह नहीं होगा । दोपहर को खाने के लिये आना होगा ।”

“कब ?”

“एक बजे ।”

“आजाऊँगा ?” रमाशङ्कर सन्तुष्ट होकर चलने लगा तो बाधा देकर मालती ने पूछा—

“राजीव क्या स्कूल जाता है ?”

“नहीं ?”

“क्यों नहीं ?”

“अभी भेजा ही नहीं ।”

“तो फिर पहिले उसे लेकर स्कूल में दाखिल कर आओ, मैं उसके कपड़े बदलती हूँ ।”

“अब आज नहीं, फिर कभी देखा जायगा ।”

“फिर नहीं, आज और अभी ?”

एक बार रमाशङ्कर का मिजाज गर्म हुआ । हुक्म और धौंस सहने की उसकी आदत नहीं, यह दो सौ रुपयों में खरीदी हुई औरत अभी से उसपर धौंस जमा रही है । उसने विरोध में कुछ कहने के विचार से आँख उठाकर मालती की ओर देखा, परन्तु उसकी मुखमुद्रा देखकर उससे विरोध करते न बन पड़ा । फिर भी उसने कहा ।

“अच्छा कल सही ।”

“कल नहीं—अभी ! ठहरो, मैं उसके कपड़े बदलती हूँ । कहाँ हैं कपड़े ? बक्स की चाभी मुझे दो ।”

चाभियों का गुच्छा उसे देकर रमाशङ्कर अन्यमनस्क-सा इधर-

उधर टहलने लगा। मालती ने बक्स से साफ धुले कपड़े निकाल राजीव को पहनाते हुए दुलार से एक थपकी देकर उसे कहा—“अब राजा बेख बन गये—जाओ स्कूल।”

परन्तु राजीव मालती से अभी तक नाराज था। उसी के कारण वह घोड़ी की सवारी से वञ्चित रह गया था। उसने मचल कर कहा—

“स्कूल मैं नहीं जाऊँगा।”

“क्यों नहीं जाओगे?”

“मेरी मर्जी, मैं खेलने जाता हूँ।”

“तुम्हें स्कूल जाना होगा?”

“नहीं जाऊँगा।”

बालक हठ करके बैठ गया। रमाशङ्कर ने पुकार कर कहा—“न हो तो जाने दो, कल चला जायगा।”

“तुम यदि नहीं ले जाना चाहते, तो मैं ले जाऊँगी। पर इसे आज और अभी स्कूल जाना होगा।”

“तो चल बेटे स्कूल।”

“नहीं जाता कोई धौंस है?”

“धौंस नहीं बेटे, स्कूल तो मैं भी जाता था।”

“पर तुम घोड़े पर भी तो चढ़ते थे।”

“घोड़ा तुम्हें भी ला दूँगा?”

“लाये तो नहीं, बाबा, इस औरत को वापस करके घोड़ी ला दो।”

“इसे भी रहने दे, घोड़ी भी ला दूँगा।”

“पर मैं स्कूल नहीं जाऊँगा।”

“चल, चलें, स्कूल जाना अच्छा है?”

मालती अबतक चुपचाप सुन रही थी, अब तैश में आकर बदन पर चादर लपेटती हुई बोली—“देखती हूँ कैसे नहीं जाते हो, चलो

मैं ले चलती हूँ ।” उसने कसकर राजीव की कलाई पकड़ ली । राजीव रौने लगा । रमाशङ्कर ने क्रुद्ध होकर कहा—

“जबरदस्ती क्यों करती है ? कल चला चायगा ।”

“मैंने कहा तो, कल नहीं, आज और अभी जाना होगा ।”

रमाशङ्कर ने इस बार फिर विरोध करना चाहा, पर मालती की दृढ़ मुद्रा देख वह चुप हो रहा । उसने प्यार से पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—“चल बेटे, जिद न कर, फिर मैं तेरे लिये बहुत-सी मिठाई ला दूँगा ।”

राजीव ने क्रुद्ध दृष्टि से मालती को धूरते हुए कहा—
“निकम्मी घोड़ी ।”

और पिता के साथ चल दिया । बालक की धृष्टता मालती को बहुत चुभी, परन्तु वह चुपचाप अपने काम में लग गई ।

दोपहर को रमाशङ्कर ने घर में आकर देखा । घर का वातावरण ही कुछ और हो गया था । सब चीजें व्यवस्थित और सफाई से रक्खी हुई थीं । रमाशङ्कर के रूखे हृदय में मालती के लिये कुछ स्नेह भाव उदय हुआ, परन्तु वह देर तक टिका नहीं । मालती ने रमाशङ्कर की प्रवृत्ति को कुछ-कुछ समझ लिया था । परन्तु वह अपने पथ पर दृढ़ बनी रहेगी, यह उसकी भावना थी । रमाशङ्कर ने कहा—“खाना तैयार हो तो जल्दी ले आओ ।”

“खाना तैयार है, परन्तु पहले जाकर स्नान कर लो । यह तेल है, यह धोती गमछा है ।” क्षण भर अटक कर रमाशङ्कर स्नान करने को चला गया ।

भोजन करके जब वह काम पर जाने लगा, तब मालती ने टोक कर कहा—“कुछ रुपये देते जाओ ।”

“किसलिये ।”

“जरूरी चीजें खरीदनी हैं ।”

“क्या क्या ?”

“वे सब क्या तुम्हें बतानी होगी ?” मालती का रुख देख रमाशङ्कर ने धीरे से कहा—“नहीं, रुपये उस बक्स में हैं, यह चाभी लो ।”

चाभी देकर रमाशङ्कर चला गया । मालती ने भोजन से निपट कर थोड़ा विश्राम किया—फिर वह थोड़े रुपये लेकर बाजार गई । कुछ वस्त्र और आवश्यक सौदा-मुलफ खरीदा ।

घर लौट कर उसने राजीव के लिये कुछ कलेवा तैयार किया—फिर उसको स्कूल से लौटने की प्रतीक्षा करने लगी । स्कूल से लौटने पर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुये—उसका हाथ-मुँह धुला, और कलेवा करा कर उसने कहा—“तूने मुझे निकम्मी घोड़ी क्यों कहा था रे ।”

“तू निकम्मी घोड़ी तो है ही ।”

“कैसे ?”

“मैं चढ़ तो सकता नहीं ।”

“मैं क्या घोड़ी हूँ जो चढ़ता ।”

“रुपये तो पूरे घोड़ी के देने पड़े थे ।”

“कितने रुपये दिये थे ?”

“सब दे दिये थे ।”

“सब कितने ?”

“जितने घोड़ी खरीदने को बाबा ले गये थे ।”

“सो घोड़ी खरीदने के बदले मुझे खरीद लाये ?”

“मैंने तो मना किया था ।”

“क्या कहा था ?”

“मैंने कहा था—यह घोड़ी नहीं—वह घोड़ी ले चलो—उसपर मैं चढ़कर दौड़ लगाता ।”

“तो तेरे बाबा ने वह घोड़ी क्यों नहीं ली ।”

“उन्होंने कहा, यह भी अच्छी है। खाना बनाकर खिलायेगी, बहुत काम करेगी।”

“सो मैंने तेरे लिये कैसा बढ़िया कलेवा बनाया, बोल मैं अच्छी हूँ या नहीं।”

“नहीं।”

“नहीं क्यों?”

“मैं घोड़ी पर चढ़ना चाहता हूँ।”

“अच्छा, मैं यदि तेरे लिये एक घोड़ी मँगा दूँ तो?”

“रुपये कहाँ हैं, घोड़ी के २० तो सब वहाँ दे दिये।”

“फिर भी यदि मैं घोड़ी मँगा दूँ तो?”

“तो मैं उस पर चढ़ूँगा।”

“स्कूल जायगा न?”

“जाऊँगा?”

“मैं कहाँ रहूँगी।”

“तुम भी रहना।”

“मुझे घोड़ी तो नहीं कहेगा?”

“नहीं।”

“फिर क्या कहेगा?”

बालक सोचने लगा। उसे कोई उत्तर न सूझा। वह मालती के मुँह की ओर ताकने लगा। मालती ने कहा—

“बोल क्या कहेगा मुझे?”

“बाबा से पूछ कर बताऊँगा?”

“अच्छा, मैं कहूँ—वही कहना।”

“क्या कहना होगा?”

“माँ कहना।”

‘धत्’ कहकर राजीव मालती के अङ्ग से निकल कर घर से बाहर

भाग गया। मालती जड़वत् खड़ी रह गई। वह सोचने लगी—एक घोड़ी के बदले, उसके मूल्य में जो औरत खरीद कर लाई गई, वह काहे को विवाहिता पत्नी और माँ के गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सकती है? नकद रुपया देकर खरीदने वाला मालिक काहे को उसे पत्नी समझ कर प्यार करेगा? काहे को उसका पुत्र माँ कहकर उसे पुकारेगा?

भर-भर-भर उसकी आँखों से मोती से आँसू टपक पड़े। वह सोचने लगी। यह भी कोई विवाह था। एक खेल था, पाँच मिनट में हो गया—फिर अपनी पुटलिया सिर पर रख मुझे खेतों के बीच होकर खरीदी हुई घोड़ी की भाँति मालिक के पीछे-पीछे आना पड़ा। आकर न स्वागत पाया, न आदर, प्रेम तो बहुत दूर है। ठीक है घोड़ी अपना काम करेगी—उसे दाना घास मिलता जायगा।

उसने एक लम्बी साँस ली। और रसोई में जुट गई।

शाम को रमाशंकर घर आया। मालती ने उसके हाथ-पैर धुला कर कलेवा दिया। फिर कहा—“अभी १० मिनट में खाना तैयार होता है।”

रमाशंकर ने कुछ जवाब नहीं दिया पर वह खुश और संतुष्ट था। घर के एक कोने में बैठे पिता पुत्र बातें करने लगे।

राजीव ने कहा—

“बाबा, मैं उसे क्या कह कर पुकारूँ।”

“किसे?”

“इस घोड़ी को?”

“छी, ऐसी बात? घोड़ी नहीं बेटा।”

“तब क्या कहूँ।”

बात रमाशंकर के कण्ठ में अटक गई। पुत्र इस औरत को क्या कह के पुकारे, यह एकाएक उसकी समझ में नहीं आया। उसने कहा—

“वह क्यों पूछता है ?”

“उसने कहा था ।”

“क्या कहा था ?”

“कहा था....”

“क्या कहा था ।”

“कहा था ‘माँ’ कह ।”

‘माँ’ रमाशङ्कर के मुँह से अनायास ही निकल गया ? वह उसे ब्याह कर लाया है । यद्यपि वह सिर्फ ब्याह का एक ढकौसला ही था । फिर भी वह उसकी स्त्री और इस बच्चे की माँ तो है ही । परन्तु न जन्मे कहीं एक अटक उसके मन में अटकी हुई थी—उसका मन उसे पत्नी स्वीकार ही न करता था । हीनता की एक भावना ने उसे ऐसा जकड़ लिया था कि वह उसे अपनी पूर्व पत्नी के पद पर स्थापित ही नहीं कर सकता था । मालती की कार्य पटुता, और उसकी सद्भावना दोनों ही का परिचय उसे इसी अल्पकाल में मिल गया था, परन्तु वह एक उपेक्षिता खरीदी हुई औरत है, वह बच्चे की सम्भाल कर ले, घर को ठीक रखे, यही बस है । वह पत्नी कैसे हो सकती है ? परन्तु वह राजीव को तो माँ की तरह ही प्यार करती है, फिर विवाह करके ही तो लाया हूँ, राजीव उसे माँ कहे तो क्या हर्ज है ।

उसने पुत्र से कहा—

“तो माँ ही कह कर पुकार ।”

राजीव ने कहा—“वाह, यह घोड़ी है ! माँ कहाँ है ?”

“घोड़ी कैसे है ?”

“रुपये नहीं दिये हैं घोड़ी के ।”

“क्या तूने यह बात उससे कही है ?”

“कह दी ।”

“उसने क्या कहा ?”

“कहा—मैं घोड़ी नहीं, ‘माँ’ हूँ ।”

“तो बेटे, माँ ही कह ।”

“क्यों कहूँ ।”

“वह माँ की तरह तुझे प्यार करती है न ।”

“प्यार ?” बालक कुछ सोचने लगा ।

“और माँ की तरह कलेवा बना कर तुझे खिलाती है, दुलार से बात करती है ।”

बालक ने कुछ सोचकर कहा—

“लेकिन जबर्दस्ती स्कूल जो भेजती है ।”

“बेटे यदि तेरी माँ जिन्दा होती तो वह भी तुझे स्कूल भेजती । अच्छे लड़के हमेशा स्कूल जाते हैं, पढ़ कर बाबू बन जाते हैं ।”

“बाबू बनकर क्या करते हैं ।”

“दफ्तर जाकर बहुत रुपये कमाते हैं । फिर बाबा को रुपया देते हैं ।”

“बाबा, मैं दफ्तर जाकर बहुत रुपया लाऊँगा और तुम्हें दूँगा ।”

“तो बेटे तुझे स्कूल जाना होगा ।”

“जाऊँगा बाबा ।”

“और खूब मन लगाकर पढ़ना होगा ।”

“पढ़ूँगा बाबा ।”

“तू मेरा राजा बेटा है ।”

एकाएक कुछ याद करके बालक ने कहा—

“बाबा, वह कहतो है कि मेरे लिये एक घोड़ी मँगा देगी ।”

“यह तो बड़ी अच्छी बात है, तो तू उसे माँ, कहा कर ।”

“घोड़ी मँगा देगी तब कहूँगा ।”

रमाशंकर हँस दिया । इसी समय मालती ने आकर उन्हें खाने के लिये बुलाया । भोजन विशेष रूप में बहुत अच्छा बना था । मालती

ने आग्रहपूर्वक पिता पुत्र को भोजन कराया। भोजन करने के बाद रमाशङ्कर अपना नारियल उठाकर बाहर को चलने लगा।

मालती ने बाधा देकर कहा—

“कहाँ चले ?”

“जरा गोपाल चौधरी की चौपाल तक जाता हूँ।”

“वहाँ जाकर क्या करोगे ?”

“चार आदमी बैठे होंगे, बात करूँगा।”

“बात घर में आराम से बैठ कर राजीव से करो। दूसरों के द्वार पर जाकर बैठने में क्या शोभा है ?”

“लेकिन....”

“लेकिन क्या ? कभी-कभी जाने में हर्ज नहीं, पर जिनके घर जाओ उन्हें अपने घर बुला कर कभी-कभी खिलाओ पिलाओ। इतने सस्ते न बनो कि किसी के द्वार पर जाओ तो कोई आदर भी न करे।”

“आज जाता हूँ फिर घर ही पर बैठा करूँगा।”

“आज बैठकर राजीव से बात करो। और फिर आराम करो। दिन भर कड़ी मिहनत भी तो करनी पड़ती है।”

राजीव ने खुश होकर कहा—“बाबा, चलो, मैं तुम्हें स्कूल की बात सुनाऊँ।”

रमाशङ्कर सोच रहा था, यह औरत तो हर बात में टाँग अड़ाती है। यह भी कोई बात है ? पर फिर उसने सोचा—बात तो ठीक है, जहाँ आने पर सत्कार नहीं, वहाँ जाने से क्या लाभ ? उसने पुत्र की ओर देख हँसकर कहा—“स्कूल की क्या बात ?”

“चलो बताता हूँ।” वह उँगली पकड़ कर पिता को खींच ले गया।

रमाशङ्कर ने देखा—केवल भोजन ही में नहीं, बिस्तरे में भी विशेषता हुई है, पिता पुत्र दोनों को साफ-सुथरे बिस्तर पृथक्-पृथक्

लगे हैं। रमाशङ्कर जाकर बिस्तरे पर लेट गया। मालती तज्जा चिलम भर कर दे गई। रमाशङ्कर तमाखू का कश लगाते और पुत्र की अटपटी बोली सुनते हुए एक ऐसी तृप्ति और सुख की अनुभूति करने लगा जैसा कभी इससे पूर्व नहीं हुई थी। फिर भी वह मालती के सम्बन्ध में कुछ भी विचार न कर सका। दोनों पिता पुत्र बातें करते-करते ही सुख की नींद सो गए।



रामनाथ रमाशङ्कर का पुराना लङ्गोटिया यार था। दोनों बचपन में एक ही पाठशाला में पढ़े थे। बड़े होने पर रमाशङ्कर तो पढ़ना-लिखना छोड़ घर की खेती-बाड़ी में लग गया था। परन्तु रामनाथ ने कस्बे के हाईस्कूल से मैट्रिक पास कर एक स्कूल में मास्टरी की नौकरी कर ली थी, मास्टरी की नौकरी करते-करते ही उसने बी० ए० तक परीक्षा पास कर ली थी। वह खुश-मिजाज, किलासी और आनन्दी प्रकृति का जीव था। कहना चाहिए—रमाशङ्कर से सर्वथा विपरीत।

बीच-बीच में छुट्टियों के दिनों में वह छुट्टियाँ मनाने रमाशङ्कर के घर आकर दो-चार दिन रहकर देहात के जीवन का आनन्द ले जाता था। दोनों में गहरा प्रेम था, साथ ही विद्वान होने के कारण रमाशङ्कर रामनाथ को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से भी देखता था। परन्तु रामनाथ सदैव रमाशङ्कर की उम्र के कारण उसे अपना बड़ा भाई समझ कर उसके साथ बहुधा छोटे भाई के समान ही व्यवहार करता

था। रामनाथ रसीली प्रकृति का होने के कारण थोड़ा सङ्गीत में भी रुचि रखता था। सङ्गीत के शहरी अल्प ज्ञान का वह अपने देहाती मित्र रमाशङ्कर के सम्मुख बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रकट करता था। पाण्डित्य के साथ ही साथ उसके सङ्गीत ज्ञान और दूसरी श्रेष्ठताओं को भी रमाशङ्कर बिना आपत्ति मान लेता था। उसे उसके गाने में भी रस आता था। वह बड़े चाव से रामनाथ के गाने सुना करता था। तारीफ भी करता था, पूर्व पत्नी के जमाने का एक हारमोनियम बाजा रमाशङ्कर के घर पड़ा था। बहुत पुराना होने, तथा असावधानी से पड़े रहने और काम में न लाने से उसके प्रायः सभी स्वर विकृत हो गये थे। रमाशङ्कर को सङ्गीत का कुछ भी ज्ञान न था। पत्नी की मृत्यु के बाद तो वह घर से तथा घरेलू सभी बातों से ऐसा उदासीन हो गया था कि वह प्रायः भार के तड़के ही खेतों पर निकल जाता और दिन भर वहीं रहता। पुत्र को कभी साथ ले जाता—कभी घर छोड़ जाता। घर पर राजीव दिन भर गाँव के बालकों के साथ खेलता रहता। ऐसी दशा में हारमोनियम को कैसे सुदशा हाँ सकती थी? फिर वह एक घटिया ही दर्जे का बाजा था। दूसरे-तीसरे महीने जब कभी रामनाथ वहाँ आता तो उस हारमोनियम की धूल-गर्द झाड़ कर शाम को अपने सङ्गीत से ग्रामीण मित्र को सुग्ध करके वाहवाही लूटता। रामनाथ के घर आने पर रमाशङ्कर प्रफुल्लित हो जाता। उसका घर जैसे पल्लवित हो जाता। राजीव तो रामनाथ चाचा को छोड़कर कहीं जाता ही न था। रामनाथ भी बालक को बहुत प्यार करता था। बहुत बार रामनाथ ने रमाशङ्कर से ब्याह करने का अनुरोध किया—पर रमाशङ्कर ने कुछ उपेक्षा से उस अनुरोध को सुना-अनसुना कर दिया। निराश होकर उसने इस विषय की चर्चा ही बन्द कर दी। इस ढङ्ग की अब कभी मिलने पर बातें चलती भी—तो राजीव के ब्याह की चलती थी, रमाशङ्कर सदैव राजीव के ब्याह की लालसा प्रकट करता,

और रामनाथ हमेशा उसे घुड़क कर राजीव को पढ़ाने लिखाने का अनुरोध करता। परन्तु रमाशङ्कर की अबोधता, उदासीनता एवं अकर्मण्यता राजीव के लिए उसे कुछ भी करने न देती थी, यही कारण था कि मालती के आने से प्रथम राजीव स्कूल जा ही न सका था।

मालती को इस घर में आए छ महीने होने आए थे, इस बीच रामनाथ रमाशङ्कर के घर एक बार भी नहीं आया था। रमाशङ्कर मालती के प्रति उसी प्रकार उदासीन था। वह उसे एक दासी से अधिक महत्व ही न देता था। उसके लिये पत्नी भाव उसके हृदय में उत्पन्न ही न हुआ था। यद्यपि वह उसकी सेवा-तत्परता और स्निग्ध भावना से प्रभावित एवं प्रसन्न था। वह उससे बहुत कम बातचीत करता, परन्तु उसके किसी काम में बाधा न देता था, अपना घर और पुत्र उसने पूर्ण रूप से मालती के ही सुपुर्द कर दिये थे।

राजीव अब मालती से प्रेम करने लगा था। परन्तु प्रेम से अधिक भय की भावना ही उसके मन में थी। मालती का दृढ़ स्वभाव, प्राञ्जल स्नेह, और आग्रहपूर्वक यत्नभाव इन सबसे अबोध बालक ने चुपचाप उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, केवल वह उसे माँ कहकर नहीं पुकार सकता था।

रमाशङ्कर के रूखे स्वभाव को मालती सह गई थी। यद्यपि यह सत्य था कि उसे न रमाशङ्कर ने पत्नी की भाँति स्वीकार किया था—न पुत्र ने माँ की भाँति, फिर भी वह इस घर में पत्नी और माँ के अधिकारों से वञ्चित न थी। अपने को पत्नी तथा माँ समझ कर वह जो भी चेष्टा रमाशङ्कर तथा उसके पुत्र के साथ करती थी उसका कहीं से यत्किंचित भी विरोध रमाशङ्कर एवं उसका पुत्र नहीं करता था। आग्रही स्वभाव का बालक यह भलीभाँति समझ गया था कि वह उसे प्यार करती है तथा उसका पिता उसकी इच्छा के विपरीत कभी कुछ करता ही नहीं है, इसी से वह अनायास ही सुशील और आज्ञा-

कारी बालक हो गया था, एवं उसे माँ कहकर पुकारने में सहमत न होने पर भी अब उसे उसी के मुँह पर घोड़ी कहकर पुकारने का साहस नहीं होता था ।

एकाएक एक दिन प्रातःकाल ही रामनाथ रमाकान्त के घर आ पहुँचा । देखकर रमाकान्त और राजीव दोनों ही आनन्द से फूल उठे । रामनाथ ने राजीव को गोद में उठाकर छाती से लगा लिया । मालती किसी काम से बाहर आई थी, एक अपरिचित शहरी भद्र पुरुष को इतनी घनिष्ठता से पति और पुत्र से मिलता देख वह भीतर चली गई । उसने सोचा अवश्य ही यह कोई इनका आत्मीय है ।

रामनाथ ने भी उसकी एक झलक देख ली । स्वभावतः ही उसके मन में एक प्रश्न उठा—“यह स्त्री कौन है ?”

और राजीव को गोद से उतारते हुए उसने अपने कौतूहल को आँखों में भरकर कहा—“वह कौन है ?”

“एक है ।”

“कौन है ।”

“औरत है ।”

“यह तो मैं भी देख रहा हूँ, लेकिन कौन है ।”

“आ गई है, रख लिया है ।”

“रख लिया है ? क्या दासी है ।”

“हाँ, नहीं, दासी नहीं ।”

“तब क्या ?”

“ऐसे ही ?”

“भई, पहेली क्यों बुझा रहे हो, साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?”

“क्या कोई रिश्तेदार है ?”

“नहीं जी, ऐसा ही कुछ हो गया ।”

“पर हो क्या गया, वह तो कहो ?”

“ब्याह ।”

“ब्याह ? क्या तुमने ब्याह किया है ?”

“ऐसे ही हो गया ।”

“तो मर्दे आदमी, इतना भेंप क्यों रहे थे, मुझे खबर भी नहीं दी । चुपचाप ब्याह कर लिया ?”

और वह उत्तर की बिना प्रतीक्षा ही किये लम्बे-लम्बे डग मारता हुआ घर के भीतर घुस गया । मालती के सम्मुख जा, दोनों हाथ जोड़ सिर झुकाकर मुस्कुराते हुए उसने कहा—“नमस्ते भाभी जी ।”

मालती ने सिर का पल्ला खींचा और चुपचाप हाथ जोड़ दिये । रामनाथ ने कहा—“मैं रामनाथ हूँ, भाभी जी । यह रमाशंकर बड़ा भाई है, इसलिए क्या कहूँ, मगर पक्का रास्कल है । ब्याह कर लाया—और मुझे खबर भी नहीं दी । भाभी जी, बस आप अपने ऊपर आफत ही आई समझिये, मैं दिन भर खाता रहता हूँ । देखूंगा क्या-क्या बनाकर खिलाती हैं आप ।”

यह आदर और गौरवपूर्ण सम्भाषण एवं आत्मीयता से श्रोत-प्रोत भाव मालती को आज तक जीवन में नसीब नहीं हुआ था । उसने मुस्कुराकर कहा—“हमारे बड़े भाग्य कि आप आये । रूखा-सूखा जो बनेगा, उसे आप अपना घर समझ कर स्वीकार करेंगे ।”

वाह, ऐसा विनय और ऐसी शिष्ट प्राञ्जल भाषा इस अपद रूखे देहाती मित्र को प्राप्त कैसे हुई । उसने उड़ती नज़र घर पर डालते हुए कहा—अरे भाई रमाशङ्कर, सुनो—भाभी लाए हो या रसायन । घर की कायापलट ही हो गई और दोनों बाप-बेटे कैसे चिकना गए हो, भाई वाह !

परन्तु रमाशङ्कर यह नहीं चाह रहा था कि वह मालती को पत्नी के रूप में रामनाथ की दृष्टि में प्रकट करे । विवश होकर ही उसे ब्याह लाने की बात स्वीकार करनी पड़ी । परन्तु वह रामनाथ से अब एका-

एक कुछ कह भी न सकता था। उसने रुखाई से मालती से कहा—
“जाओ-जाओ, रामनाथ के लिये कुछ कलेवा तैयार कर दो जल्दी से। यह शहरी जीव है। ज़रा नहाने खाने का सरंजाम ठीक रखना—वरना बिगड़ जायगा।”

मालती भीतर चली गई। राजीव ने रामनाथ की बाँह पकड़ कर उसे बाहर की ओर खींचते हुए धीरे से कहा—“इधर आओ चाचा, तुम्हें एक बात बताऊँ।”

रामनाथ ने सोचा, ऐसी कौन-सी रहस्यपूर्ण बात हो सकती है। वह हँसते हुए बाहर आया।

राजीव ने कहा—“किसी से कहना नहीं चाचा, वह-वह घोड़ी है।”

“घोड़ी? कौन?”

“वही जिससे बात कर रहे थे।”

“बेवकूफ, यह क्या बकता है, वह माँ है।”

“वाह, मैं सब जानता हूँ, वह माँ नहीं है, घोड़ी है।”

“घोड़ी कैसे?”

“हम मोल जो लाये हैं।”

“मोल?”

“नहीं तो क्या, सब रुपये खर्च हो गए, जानते हो?”

“सब रुपया?”

“बाबा से पूछ लो।”

“फिर घोड़ी कैसे?”

“घोड़ी लेने ही तो हम गये थे चाचा, बहुत बढ़िया घोड़ी थी, मैं उसी पर चढ़कर घर आनेवाला था।”

“फिर।”

“फिर बाबा ने वह घोड़ी नहीं ली, यही ली।”

“अच्छा, यह बात है ?”

“पर उससे मत कहना चाचा, मारेगी ?”

“वह क्या तुम्हें मारती है ?”

“नहीं तो—”

“तुम्हें प्यार नहीं करती ?”

“करती है चाचा, यह कुर्ता उसी ने तो सिया है, और देखो मेरी बड़ी गेंद उसी ने दी है ।”

“अच्छा ।”

“लेकिन चाचा, उसकी बात मानोगे तो वह स्कूल भेज देगी, बाबा की भी नहीं सुनेगी ।”

रामनाथ असंयत हो खिल-खिलाकर हँस पड़े । राजीव को उठाकर उन्होंने गोद में भर लिया और पीठ पर प्यार के घूँसे लगाते हुए कहा—“गधा कहीं का, समझ गया—तुम्हें उसी ने स्कूल भेजा है । रोज जाते हो न ?”

“नहीं जाने से तो वह बिगड़ती है, कलेवा भी नहीं देती, बोलती ही नहीं ।”

“अच्छा—यह बात है, और स्कूल जाने पर क्या करती है ?”

“बहुत खुश होती है, प्यार करती है, कलेवा बनाती है, मिठाई देती है । अब वह मेरा कोट सी रही है । जिस दिन मेरा इम्तिहान होगा, उस दिन मैं वह कोट पहनूँगा । तुम्हारे जैसा कोट है चाचा ।”

“यह तो बड़ी अच्छी बात है, लेकिन....”

रामनाथ आगे कुछ कहने जा रहा था कि मालती ने निकट आकर कहा—“चलिए, चाय पी लीजिये, ठण्डी हो रही है ।”

क्षण भर विमुग्ध नेत्रों से मालती के अवनत नेत्रों और मृणाल बाहु युगल पर दृष्टिपात करता रामनाथ, राजीव को गोद में लिए धीरे-धीरे भीतर आया । रमाशंकर चला गया था, मालती ने आसन

की ओर इशारा करके कहा—“बैठिए बाबू, पर घर में कप नहीं है, चाय गिलास में ही पीना होगा।”

“लेकिन भाभी, मैं बाबू नहीं हूँ, मेरा नाम रामनाथ है।”

मालती ने हँसकर कहा—“तो फिर मैं तुम्हें रामभैया कहकर पुकारूँगी।”

“हाँ भाभी, लेकिन इतना भ्रम क्यों किया?”

“तुम भैया शहरी जीव, बिना चाय के कहीं चलता है।”

उसने चाय का गिलास और हलुए की कटोरी आगे बढ़ाते हुए कहा।

राजीव ने कहा—“चाय मैं भी पीऊँगा, चाचा।”

“नहीं भैया, तुम्हें दूध पीना होगा, बच्चे चाय नहीं पीते।”

राजीव ने गुस्सा होकर कहा—“क्यों नहीं पीते, मैं तो पीऊँगा।”

“अच्छा, अपने चाचा से पूछ लो।”

रामनाथ ने कहा—“हाँ भैया, बच्चों को चाय नहीं पीना चाहिये।”

“तो तुम क्यों पीते हो चाचा?”

रामनाथ सिर खुजलाने लगा। मालती ने गिलास में दूध भरकर राजीव को दिया। उसने मचल कर कहा—“मैं दूध नहीं पीऊँगा।”

मालती ने तीखी आँखों से उसे देखा, बालक चुपचाप दूध पीने लगा। चाय पीते-पीते रामनाथ ने कहा—“रमाशंकर कहाँ गये?”

“खेत पर, आज काम जरूरी था, जल्दी ही आ जावेंगे। किसानों का काम लगालगी पर ही होता है। हाँ, राम भैया, तुम खाना कितनी देर में खाओगे।”

“जब बन जाय ।”

“बन तो आधे घण्टे में ही जायगा ।”

“तो मैं भी आधे घण्टे में खा लूँगा ।”

“पर वे तो १२ बजे आवेंगे, नहीं, तुम पहिले खा लेना ।”

“नहीं भाभी, साथ ही खावेंगे । तुम बनाकर रख दो ।”

“अच्छा ।”





रात को रमाशंकर और रामनाथ की दिल खोलकर बातें हुईं । रमाशंकर ने सब बात साफ-साफ कह दी । सब सुनकर रामनाथ ने कहा—“तुम्हारे बड़े भाग हैं रमाशंकर, कि तुम्हें भाभी जैसी स्त्री घर बैठे मिल गई । अब तुम्हें उचित है कि उसे प्रसन्न रखो और अपने उजड़े घर को हरा-भरा बनाओ । यह मत भूलना कि पुरुष के जीवन का आधार स्त्री है । उसकी ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जायगी उसे उसके सहारे की अधिक से अधिक आवश्यकता होती जायगी । जवानी में स्त्री खेलने, दिल बहलाने की वस्तु है, पर बड़ी उम्र में तो वह काम की चीज़ बन जाती है । और तुम्हारी उम्र अभी यद्यपि ऐसी कुछ ज्यादा नहीं है, पर अब तुम उस किनारे पर आ लगे हो जब तुम यह समझोगे कि पुरुष के जीवन को परिपूर्ण करने के लिये स्त्री की कितनी आवश्यकता होती है ।”

रामनाथ की गम्भीरतापूर्ण बातें रमाशंकर ने सुनी । फिर उसने

कहा—“मैं भी रामनाथ, इन बातों को समझता हूँ। जब से घर वाली मरी मन कैसा सूना-सूना हो गया था। क्या कहूँ। कभी-कभी तो जिन्दगी से मन ऊब उठता था। सोचता था कि ब्याह कर लूँ। पर एक तो ब्याह के लिये रुपया कहाँ से लाऊँ ? दूसरे लोग-हँसाई का भी डर था। पर उस दिन एकाएक जब इस लड़की पर नजर पड़ी तब यह ख्याल थोड़े ही था कि इससे एकदम विवाह ही हो जायगा। पर कुछ ऐसा ही बानक बन गया। पर मन में कहीं उत्साह, हुलास या उमङ्ग तो हुई ही नहीं। हाँ इतनी तसल्ली अवश्य हो गई कि राजीव को ठिकाना हो गया। इतने सस्ते में क्या नौकर मिल सकता था। लड़की अच्छी है, राजीव को बहुत मानती है। राजीव भी परच गया है। पर है, कड़े मिजाज की अड़ियल, जो काम ठान लेती है, वह तो होना ही चाहिए। पर मुझे इससे क्या ? वक्त पर ताजा खाना मिल जाता है, यही बहुत है।”

“ये तुम्हारे कैसे वाहियात विचार हैं, रमाशङ्कर, क्या तुम यह मानने से इन्कार करते हो कि वह तुम्हारी धर्मपत्नी है ? और तुम्हारे बच्चे की माँ है।”

“वह भी तो यही समझती है, राजीव से कहती है कि मुझे माँ कहो। और राजीव उसे क्या कहता है, जानते हो ? घोड़ी।” रमाशङ्कर दाँत निकाल कर हँस दिया।

रामनाथ को यह बात पसन्द नहीं आई। उसने नाराज होकर कहा—“जब तुम उसे एक घोड़ी के बदले उसी के मूल्य में खरीद लाये, तथा घर लाकर भी तुम उसे उतना भी नहीं मानते, जितना घोड़ी को मानते, वह इतना करती है, फिर भाई, तुम उसे ब्याह कर लाये हो, क्या तुम्हें उसे वह आदर नहीं देना चाहिये जो एक पत्नी को देना चाहिये था ?”

“उसे यहाँ कोई कष्ट नहीं है, यह तुम देख रहे हो।”

“मैं तो, वह भी देख रहा हूँ जो तुम देख ही नहीं सकते। मैं जानता हूँ कि उसके हृदय के द्वार बन्द हैं, वहाँ जिस देवता की प्रतिष्ठा होनी चाहिये, उसकी प्रतिष्ठा वहाँ नहीं हो पाई है।”

“कौन है वह देवता ?”

“तुम, जिसने उसे धर्म पत्नी बनाया है, उससे ब्याह किया है।”

“तो वह अपने देवता को हृदय में रखे, रोका किसने है ?”

“पर देवता यदि सुर्दा हो तो कैसे हृदय में उसकी प्रतिष्ठा होगी ?”

“जो हो, उस खेल को न तो ब्याह कहा जा सकता है, न यह लड़की मेरी पत्नी और मेरे बच्चे की माँ हो सकती है।”

“तुम दोनों ही की दृष्टि में वह एक घोड़ी है। तुम्हारे लड़के को यदि दोनों में से चुनाव करने का अवसर दिया जाता तो—वह निश्चय ही इसकी अपेक्षा घोड़ी खरीदना अधिक पसन्द करता। तुम भी शायद....।”

“नहीं, यह बात तो नहीं है, लड़के की बात तो दूसरी है, पर मैं तो उसकी कद्र करता हूँ ? उसके आराम का पूरा खयाल रखता हूँ।”

“उतना ही न, जितना एक घोड़ी का रखते ?”

“नहीं भाई नहीं।”

“यह सब तुम्हारी व्यर्थ की बातें हैं रमाशङ्कर, तुम यदि भाभी से आदर-प्रेम और आत्म-समर्पण की भावना से पत्नीवत् व्यवहार न करोगे—तो याद रखना यह रत्न खो बैठोगे। और ऐसा पछुताओगे कि जिसका नाम नहीं।”

रमाशङ्कर जोर से हँस पड़ा। उसने कहा, “खूब है भाई इसका जादू, तुम्हें यदि यह इतनी पसन्द है तो ले जाओ इसे। दे दो मेरे २०० रुपये। जो ६ महीने में खिलाया पिलाया—वह घोड़ी।”

रामनाथ अवाक् रह गया। वह आँखें फाड़-फाड़कर रमाशङ्कर की

और देखने लगा। रमाशङ्कर के प्रति एक घृणा की भावना उसके मन में पैदा हो गई।

रमाशङ्कर ने भी समझा कि वह जरूरत से बहुत ज्यादा बक गया। उसने कहा—“बातों ही बातों में बिगड़ उठे रामनाथ, मैं तो हँसी कर रहा था, मैं तुम्हारी इस भाभी और राजीव की माँ की खूब कद्र करूँगा। चलो, अब देखा जाय की पेट पूजा का क्या-क्या सरेजाम किया गया है।”

रामनाथ ने जवाब नहीं दिया। दोनों मित्र उठकर भोजन करने चले आए।





इसी क्षण से रामनाथ रमाशङ्कर से कुछ खिचा-खिचा-सा रहने लगा। मालती उससे दिल खोलकर बातें करती, बहुधा वे दोनों अकेले—जब रमाशङ्कर खेतों पर काम करने और राजीव स्कूल चला जाता—दोनों, मालती और रामनाथ विविध विषयों पर बातें करते, खुलकर कहकहे लगाते, कभी-कभी रामनाथ घर के काम-काज में उसका हाथ बँटाता, कभी दोनों काम-काज खत्म कर मटर के बैगनी रङ्ग के फूलों से भरे हुए खेतों की मुड़ेर पर टहलने निकल जाते। टूटे हुए हारमोनियम की यत्न से मरम्मत करके उसे रामनाथ ने काम लायक बना लिया था—उसपर वह स्वर साधता, और मालती अलाप लेती। इसी प्रकार इन्हीं ३-४ दिनों में मालती और रामनाथ की घनिष्ठता बहुत बढ़ गई। रामनाथ के कलेजे में रमाशङ्कर की वह बात लोहे की तप्तशलाका के समान चुभने लगी कि २००) देकर तुम्हीं इसे ले जाओ। वह सोचता, यह रमाशङ्कर एकदम पशु है। परन्तु

यह क्या सम्भव है ? क्या वह मालती को ले जाकर अपनी जीवन सङ्गिनी बना सकता है ? क्या यह उचित होगा ? और मालती ही क्या यह पसन्द करेगी ? फिर, चाहे भी जो हो, उसने उससे ब्याह किया है । वह उसकी धर्मतः पत्नी है ।

मालती सोचती, कितना सम्ब, शिक्षित और जीवित है यह नव-युवक, उसके नेत्रों और वाणी में कितना रस है । उसके रक्त में कितना प्रेम है । वह कैसा उदार हँसमुख और भावुक व्यक्ति है, क्यों नहीं मनुष्य की मनचाही होती । क्यों अनचाहत के गठजोड़े बँध जाते हैं ।

रामनाथ ने कहा—“कल जाऊँगा भाभी ।”

“इतनी जल्दी राम भैया, अभी तो मैंने तुम्हें आँख भर कर देखा भी नहीं ।”

“तो आज आधे दिन और पूरी रात भर खूब आँख भरकर देख लो । फिर दिन निकलते ही प्रस्थान ।”

“दो दिन तुम्हारे साथ कैसे सुख से हँसते-बोलते कटे राम भैया ! अब तुम चले जाओगे तो वही रात सूनी-दिन सूने ।”

“ऐसा क्यों कहती हो भाभी, रमाशङ्कर बुरा आदमी नहीं है, बस जरा रूखा है ।”

“क्या तुम यह विश्वास कर सकते हो कि उन्होंने इन नौ महीनों में कभी एक बात भी मुझसे नहीं की है ? दिन में खाने और रात को सोने भर को आते हैं । वह भी मेरे बड़े बाँधने से, नहीं तो चौधरी की चौपाल पर आवारागर्द की भौँति आधी रात तक पड़े रहते थे ।”

“मैं उसे जानता हूँ भाभी । एक तो वह वैसे ही रूखे स्वभाव का है । दूसरे, घर वाली के मरने से आवारा ही रहा है, उसे घेर-घार कर ठीक करना होगा । मैं यत्न करूँगा । तुम अधीर न होना भाभी ।”

मालती ने कुछ जवाब नहीं दिया । बातचीत उदासी का रङ्ग पकड़ती जाती थी । मौसम सुहावना था । सूरज की सुनहरी किरणें

वृक्षों के हरे-हरे पत्तों में से छुनकर अजब छटा दिखा रही थीं। आमों के बौर की सुगन्ध से हवा भरी थी। रामनाथ ने हँसकर कहा—“भाभी एक गीत गाओ। कैसा अच्छा मौसम है।”

मालती प्रसन्न थी। एक प्रच्छिन्न उत्साह ने उसे तैयार कर दिया। हारमोनियम के सुर से सुर मिलाकर उसने एक ग्रामीण गीत गाया। वह हारमोनियम पर झुक रही थी। उसकी इठलाती हुई लटें रामनाथ के चौंदा से चमकते हुए मस्तक को छू रही थीं। रामनाथ आनन्द विभोर होकर बाजे पर अपनी अभ्यस्त उँगली फेर रहे थे। गायन और वाद्य के स्वर एक हो रहे थे। गाना समाप्त होने पर दोनों एक बारगी ही खिलखिलाकर हँस पड़े। इसी समय उन्होंने देखा—रमाशङ्कर विस्मय विमूढ़-सा द्वार पर खड़ा है, उसे देखते ही मालती तो भीतर भाग गई। रामनाथ ने कहा—“आओ भाई, सुना तुमने भाभी का गाना, वाह, क्या गला है! रमाशङ्कर तुम्हें एक अच्छा हारमोनियम भाभी के लिये खरीदना पड़ेगा।”

पर रमाशङ्कर ने जवाब नहीं दिया। इधर-उधर की एक-दो बातें करके एकाएक उसने पूछा—“रामनाथ, कब तुम्हारा स्कूल खुल रहा है?”

इस प्रश्न से थोड़ा धक्का खाकर रामनाथ ने कहा—“परसों, फिर उसने क्षणभर बाद ही कहा—कल प्रातःकाल ही मैं जाऊँगा रमाशङ्कर।”

“अरे इतनी जल्दी, ऐसी क्या बात?”

“बात कुछ नहीं, परसों स्कूल में हाजिरी देना है। पर मैं जल्दी जाऊँगा।” रमाशङ्कर ने अनमने भाव से कहा—“हाँ आते-जाते रहो भाई।”

रमाशङ्कर कुछ और भी कहना चाहता था। पर रामनाथ वहाँ से एकाएक तेजी से चल दिया। रमाशङ्कर उड़ती-सी नजर हारमोनियम पर डालकर घर में इधर-उधर चक्कर लगाने लगा।





मालती से विवाह कर लेने पर भी रमाशङ्कर के मन में मालती के प्रति पत्नीत्व की भावना उदय नहीं हुई थी। इसके सिवा उसने भद्दी रीति से रामनाथ से कह दिया था कि यदि वह चाहे तो २००) रु० देकर उसे ले जाय। फिर भी किसी अज्ञात मर्म के वशीभूत होकर वह मालती की रामनाथ से इतनी घनिष्टता नहीं सह सका। कहीं से एक कटु ईर्ष्या की लहर उसके रक्त में प्रविष्ट हो गई। इस प्रकार एक रस होकर गाना, खिलखिलाकर हँसना, ठठोली मारना इन सब का क्या मतलब है? दोही दिन में यह रामनाथ का बच्चा उसका इतना सगा हो गया? मेरे साथ बैठ कर तो उसने कभी ऐसे धुल मिलकर बात भी नहीं की। कभी उस तरह खुल कर हँसी भी नहीं। फिर, चाहे भी जो हो मोल खरीद कर और व्याह करके, उसे लाया तो मैं ही हूँ? उसका मालिक तो मैं ही हूँ। अच्छा बुरा जैसा भी है उसे सहारा तो मेरा ही है, फिर एक अनजान आदमी के साथ इस तरह ही-ही करके हँसना, इसके क्या माने?

रमाशंकर जितना ही इन सब बातों पर विचार करता, उसका क्रोध और असन्तोष बढ़ता ही जाता था। उसने अपने व्यवहार की त्रुटि को एक बार भी आँख उठाड़ कर नहीं देखा। वह गुस्से में भरा हुआ दिन भर अपने काम काज में लगा रहा और शाम को आकर चुपचाप बिस्तर पर पड़ रहा।

मालती कलेवा हाथ में लेकर वहाँ आई। चौकी पर पानी और कलेवा रखकर कहा—“इस तरह सुस्त क्यों बिछौने पर पड़ रहे? थोड़ा पानी पी लो। मैं अभी खाना तैयार किए देती हूँ।”

रमाशङ्कर ने उसकी ओर बिना ही देखे रुखाई से कहा—“कलेवा और खाना दोनों ही मुझे नहीं चाहिये।”

“क्यों? तबियत कुछ खराब है।”

“हाँ, खराब है।”

“देखूँ?” मालती ने उसका माथा छुआ। इतनी आत्मीयता से बातें करने और रमाशङ्कर के अङ्ग के स्पर्श करने का मालती के लिये यह प्रथम ही अवसर था, इससे पहिले उसे रमाशंकर के निकट जाने, उससे आत्मीयता की बातें करने का हिम्मत और इच्छा ही नहीं होती थी। एक अज्ञात बन्धन—दीवार की सी आड़ जैसे उसके और रमाशङ्कर के बीच रहा था। वह अपने को पराई सी—खोई सी पाती थी। परन्तु रामनाथ का भाभी सम्बोधन, घनिष्ठ आत्मीयता, स्वच्छन्द स्नेह और मर्यादित आदर से जैसे उसके भीतर का सोया अहंभाव चैतन्य हो गया। रामनाथ आत्मीयता और आदर से उस अकिञ्चन को जो सम्पन्न कर गया था—उससे, वह तन मन से प्रसन्न और उत्साहित थी। उसी से अभिभूत होकर वह रमाशङ्कर के इतने निकट पहुँची। उससे ऐसी आत्मीयता से बातचीत की और उसे इतनी ममता से छुआ।

मालती ने कहा—

“बुखार उखार तो कुछ है नहीं, थक गये हो। अच्छा रहो, एक गिलास चाय बना लाती हूँ।”

“जरूरत नहीं है, मैं चाय पीने वाला बाबू नहीं हूँ। वे जब अब फिर आवें तो उन्हें चाय पिलाना। यह लाइ प्यार उन्हीं को दिखाना।”

“क्या मतलब ?”

“किस बात का मतलब ? सीधी ही तो बात कही है ?”

“तो फिर कहो ?”

“मुनना चाहती हो ?”

“क्यों नहीं ?”

“तब कहो, यह रामनाथ तुम्हारा कौन है ?”

“यह तो मुझसे ज्यादा तुम्हीं जानते हो।”

“पर मालूम तो ऐसा पड़ता है, अब तो तुम्हीं उसे मुझसे अधिक जानती हो ?”

“मैं इतना ही जानती हूँ कि वे तुम्हारे मित्र हैं, छोटे भाई के बराबर हैं ! यही तो तुमने बताया था ?”

“हूँ, और उसने क्या बताया था ?”

“यही, जो तुमने बताया था।”

“और कुछ नहीं ?”

“नहीं।”

“तो बाकी सब तुमने स्वयं समझ लिया ?”

“बाकी क्या ?”

“यह कि मैं एक उजड़ू गँवार, गधा और जंगली आदमी हूँ, और वह एक छैला रसिया है।”

“ऐसी बातें भी तुम करना जानते हो ?”

“तो क्या सब बातों का ठेका तुम्हीं ने ले लिया है ?”

“किन बातों का, सुनू तो तनिक ।”

“कहाँ तक सुनोगी, मुझसे तो वैसी मीठी-मीठी बातें करनी आती नहीं । न हारमोनियम बजाना-नाचना गाना और बेहयाई से हँसना आता है ।”

“घर में अपने लोगों से हँसना बोलना भी बुरा है ?”

“कौन है वह तुम्हारा ?”

“मेरा नहीं, तुम्हारा तो है, तुम्हारे आत्मीयों की मर्यादा क्या मुझे नहीं रखनी चाहिये ?”

“सो इस तरह नाच गाकर, ही-ही हँसकर मर्यादा का पालन होता है ?”

“इसमें अमर्यादा क्या है ?”

“कभी तुमने मुझे भी अपना गाना सुनाया था ?”

“कभी तुमने सुनने की इच्छा की थी ?”

“और इस तरह बेहयाई की हँसी ?”

“बेहयाई की बात तो मैं नहीं जानती, पर जब हँसने की बात हो तो हँसा ही जाता है ?”

“कभी मेरे सामने भी तुम हँसी ।”

“तुमने कभी मुझे हँसाने की चेष्टा की ?”

“मुझे कभी चाय बनाकर पिलाई, हलुआ खिलाया ?”

“चाय पीने की तुम्हें आदत नहीं, वह कुछ अच्छी चीज़ भी नहीं । वे मेहमान थे, शहरी थे, शहर में वे चाय पीते थे, इसी से उनके लिये चाय बनाती थी, हलुआ खातिरदारी के लिये । मेहमान की खातिरदारी अपनी मर्यादानुसार करना गृहस्थ का धर्म है ।”

“मैं तुमसे गृहस्थ धर्म की शिक्षा लेना नहीं चाहता ।”

“मैं भी इसकी उतनी हाजतमन्द नहीं हूँ ।”

मालती इतना कहकर चलने लगी तो रमाशङ्कर ने कर्कश स्वर

में पुकार कर कहा—“जानती हो, मैं तुम्हें मोल खरीद कर लाया हूँ, अपनी घर गिरस्ती ठीक रखने के लिये। बाहरी लोगों से ठठोली मारने के लिये नहीं।”

“तुम्हारे मोल-भाव की बात मुझे मालूम है। परन्तु तुम और तुम्हारा लड़का जो मुझे अपनी सवारी की घोड़ी समझते हैं, वह मैं नहीं हूँ। तुम्हारी ही तरह एक आदमी हूँ। तुम्हारी ही बराबर, एक रत्ती भी कम नहीं, और तुम भले ही भूल जाओ—पर मैं यह नहीं भूल सकती कि मैं तुम्हारी ब्याहता पत्नी हूँ।”

“तुम चाहे जो कुछ समझो। परन्तु याद रखना गैर लोगों के सामने गाना-बजाना, हँसना, ठठोली मारना मुझे पसन्द नहीं है।”

“तुम्हें क्या पसन्द है और क्या नहीं, इससे मुझे क्या? अपनी समझ से मैं कोई खराब काम नहीं करती हूँ। कभी करूँगी भी नहीं। तुम्हारे कहने से भी नहीं।”

“परन्तु तुम्हें यदि मेरे पसन्द की परवा नहीं है तो तुम रामनाथ के साथ चली जाती। मैंने उससे कह दिया था—मैंने दो सौ दिये हैं, वह दे जाओ और इसे ले जाओ। जो खिलाया-पिलाया वह मैंने छोड़ा।”

“यह सब कहा तुमने?”

“कहता तो हूँ।”

“कह सकोगे—ऐसा नहीं सोचा था। सोचती थी—निबुद्धि आदमी हो—ठोंक-पीट कर ठीक कामचलाऊ बना लूँगी, यह नहीं जानती थी कि इतने गिरे हो।”

वह और रुकी नहीं। तेजी से चल दी। रसोई में चूल्हा जल रहा था। चूल्हे पर तरकारी चढ़ी थी। वह सब जलकर खाक हो गई। पर मालती ने उधर आँख उठाकर देखा भी नहीं। वह अपनी कोठरी में भीतर से कुण्डली चढ़ाकर बिछौने पर पड़ गई।

रमाशङ्कर ने सोचा—बहुत खराब बात हुई। इतनी कड़ी बात वह

करना न चाहता था। इस बात के अनौचित्य पर वह बारम्बार सोचने लगा। एकाएक उसे अपनी एकाकी विपत्तीक स्थिति का भान हुआ। क्या मालती मुझसे हीन है? क्या मैं उससे श्रेष्ठ हूँ? वह जब से आई है, दासी के समान काम करती है, मैं कभी उससे मुँह भर कर बात भी नहीं करता। वह राजीव को इतना प्यार करती है, पर राजीव भी उससे कभी मीठा नहीं बोलता। उसका अपराध क्या है। माना, मैंने खरीदी ही है, तो क्या मुझे उसका ऐसा अपमान करना उचित है। परन्तु वह भी तो बड़ी तेज़ तराक है, नाक पर मल्लू नहीं बैठने देती। औरत की जात तो दबकर ही ठीक रहती है। ऐसी मुहफ़्त भी किस काम की।

रमाशङ्कर बहुत यत्न करने पर भी यह निष्कर्ष न निकाल सका कि आखिर कसूरवार कौन है। वह या मालती? फिर भी वह अपने व्यवहार पर लजित था, पर रामनाथ पर उसे भारी क्रोध था, उसने सोचा कि उसका घर में आना-जाना ठीक नहीं है। इस बार आवेगा तो उसे साफ़ कह दिया जायगा। या उसे एक खत लिख दूँगा कि यहाँ आने-जाने की ज़रूरत नहीं। दोस्ती ख़त्म।

उसने करवट बदली। पर नींद नहीं आई। रात गम्भीर होती गई। विचारों की परस्पर विरोधी धारा मस्तिष्क में टकरा रही थी। वह सो नहीं पाता था। एकाएक मालती के उस स्पर्श की उसे याद आ गई। उस स्मृति से ही वह पुलकित हो उठा। जैसे आनन्द की एक बिजली नसों में घूम गई हो। पुरुषत्व में जो नारी तत्व का अभाव है, अकस्मात् उसकी भावना उसके चैतन्य को छू गई। पहिली बार ही वह मालती में स्त्री भाव को आरोपित कर सका। उसने कसकर तकिया छाती से लगा लिया—और उसमें मालती के अस्तित्व को आरोपित करके सो गया। पुत्र के भूखे सोने का भी उसे ध्यान नहीं रहा।



६

प्रातःकाल उठकर रमाशंकर ने देखा—चूल्हा ठण्डा है। और मालती की कोठरी के द्वार भीतर से बन्द हैं। राजीव रात को भूखा सो गया था, वह खुद भी भूखा सोया था—उसकी एक बार इच्छा हुई कि मालती को जगा दे, पर फिर कुछ सोचकर वह स्वयं ही चूल्हा जलाने लगा। यह काम उसके लिये नया न था, अपने एकाकी जीवन में बहुत बार वह चूल्हा जला चुका था।

खटपट सुनकर मालती कोठरी से बाहर आई। रमाशंकर को रसोई में चूल्हा जलाते देखकर बोली—

“यह क्या हो रहा है ?”

“रात राजीव भूखा सो गया था, उसके लिये थोड़ा कलेवा बनाए देता हूँ।”

“तुम हाथ मुँह धोओ, कलेवा मैं बनाए देती हूँ।”

“रात तुम्हारी तबियत ठीक नहीं थी, अभी तुम सो रहो। आराम करने से जी अच्छा हो जायगा।”

रमाशंकर के इस भाव परिवर्तन को देख मालती को हँसी आ गई। पर उसने हँसी रोककर कहा—“मेरी तबियत ठीक है, जाओ तुम हाथ-मुँह धो डालो।”

रमाशंकर ने और आग्रह नहीं किया। वह आज बहुत खुश था, और किसी तरह मालती को खुश करना चाहता था। बार-बार उसे रसोई घर के चक्कर काटते देख, मालती ने कहा—“भूख बहुत बेचैन कर रही है।”

“भूख नहीं, मैंने कहा—तुम्हारी तबियत।”

“मेरी तबियत बहुत अच्छी है, तुम राजीव को जगा दो। कलेवा तैयार हो गया।”

“राजीव, ओ राजीव, उठ गधे, कलेवा तैयार हो गया।” रमाशंकर का उत्साह और जोश देखकर मालती चकित रह गई।

पिता-पुत्र को खिला-पिलाकर वह कोई कपड़ा सीने बैठ गई। रमाशंकर ने बाहर जाते-जाते कहा—

“मैंने कहा, किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है?”

“नहीं।”

रमाशंकर और दो कदम आगे बढ़कर पीछे फिरा, कुछ इधर-उधर करके उसने पूछा—“राजीव, हाँ, राजीव स्कूल ठीक समय पर जाता है न।”

“जाता है।”

रमाकान्त सन्तोष से सिर हिलाता हुआ चला गया। मालती के होठों पर एक हलकी मुस्कान आई और चली गई। राजीव अपने खेल में लगा था, वह बड़ी देर तक उसे देखती रही।



दोपहर का भोजन करके रमाशंकर इस पशोपेश में था कि वह अब काम पर जाय या घर में आराम करे—यह बात नहीं कि खेत पर काम न था। बात असल में यह थी कि वह कई दिन से मालती के सामने दिल की घुण्डी खोल देना चाहता था। वह मालती से अपना प्रेम निवेदन करना चाहता था। मालती से बात करने की उसने बहुत बार चेष्टा की, पर मालती के उदासीनता भरे संक्षिप्त जवाब सुनकर वह चुप हो जाता था, अब क्या बात करे, यह वह समझ ही नहीं पा रहा था। वह चाहता था कि मालती एक बार मेरे सामने दिल खोलकर हँसे। वह उसी तरह सुरीले स्वर में गावे। परन्तु कैसे ? यह वह नहीं समझ पा रहा था। फिर भी आज उसने इरादा किया था कि वह मालती को हँसायेगा। उसे गीत गाने को विवश करेगा। ठीक ही तो है। वह उसकी पत्नी है, उसे उससे दिल खोलकर बात करनी चाहिये। यह क्या कि रैन बसेरा किया और चला दिये ? वाहि-

यात । वह न जाने कितनी बार अपने को धिक्कार चुका था । मालती के साथ उपेक्षा और अपमान का व्यवहार करने के लिये वह अपने को किसी तरह क्षमा नहीं कर पा रहा था ।

एकाएक उसके रक्त की प्रत्येक बूँद रुक गई । उसके दिल में जैसे एक धक्का लगा । उसने देखा, रामनाथ सामने आ रहा है । हाथ में फलों की टोकरी और एक बण्डल है ।

रामनाथ ने एकदम घर के भीतर जाकर मालती को भाभी कहकर नमस्ते किया । मालती ने एकदम प्रफुल्लित होकर कहा—“अरे, एकाएक कैसे आ गये राम भैया ।”

रमाशङ्कर का सारा उत्साह ठण्ढा हो गया । रामनाथ को देखते ही मालती जो शतदल कमल की भोंति खिल उठी, यह देखकर उसका तन-बदन जल उठा । उसे अपनी ओर आते देख तथा उसकी मुखमुद्रा देखकर रामनाथ ने कहा—“खैरियत तो है रमाशङ्कर भाई ।”

“सब ठीक है, तुम्हें क्या मेरा खत नहीं मिला ?”

“न मिलता तो स्कूल से छुट्टी लेकर क्यों भागा आता ।”

“आने की तो कोई बात खत में नहीं थी ।”

“न आने की तो थी ? क्या बात है, यही जानने को भागा आया हूँ ।”

फिर मालती को देखकर उसने हँस कर कहा—“अरे, यह बात तो होती रहेगी । हाँ, देखना भाभी, तुम्हारे लिये एक साड़ी लाया हूँ और राजीव के लिये यह सूट है । तुम क्या मरे बैल के समान दीदे दिखा रहे हो, तुम्हारे लिये कुछ नहीं है ।” उसने रमाशङ्कर की छाती में एक घूसा जड़ा । फिर मालती से कहा—“भाभी, जरा चाय मिल जाती तो....”

“अभी बनाती हूँ । खाना भी दस मिनट में तैयार हो जायगा । बस एक सब्जी....”

वह रसोई घर में घुस गई। रामनाथ ने रमाशङ्कर का हाथ पकड़ कर उसे बाहर लाकर कहा—“अब कहो, क्या हिमाकत सूझी तुम्हें, ऐसा खत क्यों लिखा?”

“यों ही लिख दिया?”

“आखिर कुछ बात भी है?”

“बात कुछ नहीं।”

“बात कुछ नहीं, तो—मेरा आना-जाना घर में क्यों बन्द? और दोस्ती क्यों खत्म? अभी तो हम दोनों जिन्दा हैं और दोस्ती तो मरने पर भी खत्म नहीं होती, जानते हो?”

“सब जानता हूँ।”

“तब?”

“तब क्या?”

“यह ऐसा खत क्यों लिखा—साफ-साफ कहो।”

“कहने की क्या बात है, बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो कही नहीं जाती, अक्ल से सोच ली जाती हैं।”

“ऐसी ही कुछ बात हो गई क्या?”

“समझ लो हो ही गई।”

“तो भाई, पहेली मत बुझाओ, कुछ मुझे भी तो समझाओ, मेरी तो अक्ल ही कुछ काम नहीं कर रही है।”

परन्तु रमाशङ्कर चुप हो गया। एकदम घोटने वाली कड़ुवाहट से उसका तन-मन भर गया।

इसी समय मालती ने आकर कहा—“राम भैया, चाय और खाना दोनों तैयार है।”

“तो राम भैया और रमाशङ्कर दोनों इधर भी तैयार हैं, चलो।”

रमाशङ्कर ने रूखे स्वर से कहा—“मैं तो अभी खाना खाकर ही उठा हूँ। तुम खाओ।”

“तो तुम जरा-सी चाय ही पी लेना ।”

“चाय हम देहातियों को बहुत नुकसान करती है, वह केवल तुम जैसे शहरियों ही को लाभ पहुँचाती है ।”

“यह कैसी बात ?”

“ऐसी ही बात है, जाओ, पीते जाना और मतलब समझते जाना ।”

“तब चलो, बातें ही करते चलेंगे ।”

“बातें फिर हो लेंगी, तुम खाना खाओ ।” मालती ने कहा—
“खाना परस आई हूँ राम भैया ! ठण्डा होकर सब मिट्टी हो जायगा ।”

“तो तुम रमाशङ्कर क्या काम पर जा रहे हो ?”

“जा तो रहा था, पर अब न जाऊँगा, आज तुमसे बातें करूँगा ।”

“तब मैं खट से आया जाता हूँ ।” रामनाथ चुटकी बजाकर रसोई घर की तरफ मालती के पीछे-पीछे गया । और रमाशङ्कर कुछ सिंह की भोंति ताव-पेच खाता हुआ घर के बाहर टहलने लगा ।



११

“मेरी नसों में खून है रामनाथ, पानी नहीं ।”

“लेकिन बात भी कुछ हो ।”

“तुम सब जानकर भी अनजान बनते हो, या हम देहातियों को बिलकुल ही कम अङ्ग समझते हो ?”

“तुम्हें हो क्या गया है रमाशङ्कर, मेरी समझ में नहीं आता ।”

“समझ में न आने की क्या बात थी । जबतक निभी-निभी, न निभी न निभी । मैंने लिखा था कि यहाँ मत आना—तब आए क्यों ?”

“पर मैं बिना आए नहीं रह सकता था ।”

“वह मैं भी समझता था, पर रामनाथ, यह इतना आसान नहीं है, मैं खून कर डालूँगा ।”

“किसका ?”

“तुम्हारा, और किसका ।”

“लेकिन मेरा कसूर ?”

“कसूर पूछते हो, चोरी और सीनाजोरी !”

“पर भई, कैसी चोरी ?”

“तुमने बेहयाई पर कमर कस ली है, तो कोई क्या करे ?”

“गालियों भी देने लगे, शायद अब मार-पीट भी करने लगोगे ।”

“मैं कहता हूँ मैं खून कर डालूँगा ।”

“मगर असल बात नहीं बताओगे ?”

“तुम दूसरों की औरतों से ठठोली करते फिरोगे और लोग तुम्हें देवता समझते रहेंगे । तुम्हारे शहर में ये सब बातें चल सकती हैं, यहाँ देहात में नहीं ।”

“आह, यह बात है”, रामनाथ सिर पकड़ कर बैठ गया ।

रमाशङ्कर क्रोध से काँपता हुआ घर में घुस गया । रामनाथ की लाई हुई साड़ी फलों की टोकरी और पैकेट उसके ऊपर फेंक कर कहा—“यह चारा कहीं दूसरी जगह मछली फसाने के काम में लाना । यहाँ से टल जाओ खैरियत इसी में हैं, इस वक्त मेरी आँखों में खून उतर रहा है ।”

रामनाथ ने घायल बैल की भोंति कराह कर कहा—“जाता हूँ भाई जाता हूँ, तुम अपने आपे में रहो । मैं अब कभी तुम्हारे द्वार पर नहीं आऊँगा, नहीं आऊँगा । बस ।”

रामनाथ लड़खड़ाता हुआ चला खड़ा हुआ । सब बक-भक्त सुनकर मालती बाहर आई । जाते हुए रामनाथ को देखकर उसने पुकारा—“राम भैया, ओ राम भैया ।”

परन्तु रामनाथ ने पीछे मुँह करके नहीं देखा । रमाशङ्कर ने कहा—

“भीतर जाती है या गँडासे से कुट्टी करूँ ।”

“मैं कहती हूँ तुममें तनिक भी आदमियत है तो उन्हें बुला लो, उन्हें मत जाने दो ।”

“मैंने जो कहा—वह तूने नहीं सुना।”

“और मैंने जो कहा—वह तुमने नहीं सुना।”

“बदजात औरत।”

“नामर्द मर्द।”

यह स्वाभाविक बात है कि गुस्सावर का गुस्सा किसी गुस्सावर के मने नहीं ठहरता। रमाशङ्कर क्रोध से काँपता हुआ खड़ा रहा। लती जलती आँखों से रमाशङ्कर को घूरती हुई घर में चली गई।



१२

मालती ने अपनी कोठरी में जाकर भीतर से सॉकल चढ़ा ली । रमाशङ्कर चुपचाप जाकर बिछौने पर पड़ रहा । राजीव निरुपाय इतना मिठाई और फल खराब होने से रोने लगा । उसके रोने पर किसी ने ध्यान नहीं दिया । दिन बीता, सॉभ हुई । रात हुई और वह भी बीत गई । इस घर के तीनों प्राणी निष्प्राण की भाँति पड़े रहे । भोर होते ही रमाशङ्कर चुपचाप खेतों की ओर चला गया ।

बहुत देर बाद राजीव के रोने-चिल्लाने पर मालती कोठरी से बाहर आई । आकर राजीव से पूछा—

“रोता क्यों है ?”

“भूख लगी है ।”

मालती कुछ देर चुपचाप आकाश की ओर ताकती रही । फिर रसोई घर में गई । कलेवा तैयार करके राजीव को खिलाया । कुछ

उठाकर रख दिया। वह फिर चुपचाप आकाश की ओर देखती रही। बहुत से गम्भीर विचार उसके मस्तिष्क में तूफान उठा रहे थे। वह सोच रही थी कि क्या इस पशु के साथ रहना सम्भव है ?

परन्तु अब वह जाय कहाँ ? कौन उसे आश्रय देगा ? परन्तु यहाँ भी नहीं रहा जा सकता, इतना होने के बाद। मैंने तनमन से उनकी सेवा की परन्तु इनके हृदय-देवता चैतन्य नहीं हुए। फिर जीवन क्या एक गुलामी पर अर्पित किया जाने वाला नैवेद्य है ? नहीं-नहीं, वह एक बहुमूल्य निधि है। उसे इस प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। स्त्री होना अभिशाप हो सकता है, अपराध नहीं। सेवा करना, प्रेम बिखेरना, आनन्द की वर्षा करना—जीवन का सौन्दर्य है, इसे नहीं त्यागा जा सकता। विषाद के आँसुओं से जीवन पथ को दलदल नहीं बनाया जा सकता। संघर्ष यदि जीवन तत्त्व की रक्षा करता है, तो फिर संघर्ष ही सही।

उसने सामने उदास भाव से बैठे हुए राजीव को देखा। आह, बेचारा बिना माँ का बच्चा। मैंने कहा था कि मैं तेरी माँ हूँ, वह इसे रुचा नहीं। माँ की अभिलाषा से मैंने मातृ भाव की सब सात्विक भावनायें इस बालक पर उडेल दीं पर मुझे इसके मुँह से माँ शब्द नहीं सुनाई पड़ा। किन्तु, क्या यह अबोध शिशु इसके लिये जिम्मेदार है ? त्रुटि कहीं है तो मुझ में ही है। मैं वास्तव में न पत्नी हूँ न माँ हूँ। कैसे मैं अपने में से उस त्रुटि को दूर करूँ ?

एकाएक उसने राजीव को बुलाकर अपनी गोदी में बैठा लिया। बड़ी देर तक वह चुपचाप उस बालक को छाती से लगाए बैठी रही। उसकी आँखों में आँसू न थे। वह जैसे शून्य आकाश में उड़ी चली जा रही थी।

अन्त में उसने निर्णय कर लिया। धीरे से उसने बालक को गोद से उतार कर कहा—“राजीव, क्या आज स्कूल नहीं जायगा भैया।”

“नहीं जाऊँगा।” बालक ने हठ पूर्वक कहा।

“तो आज यहीं बैठकर पढ़।”

वह उठी, उसने अपने वस्त्र उतार कर रख दिये। पुराने वस्त्रों की पोटली खोली जिन्हें पहनकर वह इस घर में सरसों से फूले खेतों की मुड़ेरों पर पाँव-प्यादे चलकर आई थी। उसने ये वस्त्र पहने। वही पोटली बगल में ली, कुछ देर खड़ी होकर वह सोचती रही, फिर उसने राजीव के पास आकर दुलार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—“राजीव भैया तुम्हारा और तुम्हारे पिता का कलेवा वहाँ रखा है, जब भूख लगे खा लेना। अब मैं जाती हूँ।”

बालक आशंका और भय से अभिभूत हो गया। मालती के प्रेम की छाप उसके हृदय पर पड़ गई थी। उसने डरते-डरते कहा—“तुम कहाँ जाती हो?”

“नहीं जानती, पर जाती हूँ।”

“नहीं, मत जाओ,” उसने मालती का पल्ला पकड़ लिया।

“जाना तो होगा भैया। तुम बराबर स्कूल जाना। बोलो जाओगे?”

“जाऊँगा।” उसने आँसू पोछे।

“तुम राजा बेटा हो”, उसने बाहर कदम बढ़ाया।

राजीव चिह्नाकर बोला—“सुनो मत जाओ, मैं तुम्हें माँ कहूँगा।”

मालती की आँखों से भर-भर आँसू भरने लगे। उसने राजीव को छाती से लगा कर कहा—“राजा बेटे, जैसे तुम अपनी बड़ी माँ को न रोक सके—वह चली गई, उसी तरह मैं भी चली ही जाऊँगी। पर मैं तुम्हें नहीं भूलूँगी।”

“मत जाओ, जो तुम कहोगी वही मैं करूँगा। कभी ज़िद नहीं करूँगा।”

मालती उसे छाती से लगाकर अवाक् आँसू बहाती रही। फिर

चल दी। राजीव जोर से चिल्ला पड़ा—“मत जाओ मॉँ, मैं यहाँ तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।”

मालती ने पीछे फिर कर नहीं देखा, आँखों से गङ्गा-जमुना की धार बहाती—मटर के खेतों में मुँडेर-मुँडेर चलती चली गई। वइ चली गई।



१३

राजीव रोते-रोते सो गया। उस सुने घर में उसे जब कोई प्राणी सान्त्वना देने नहीं आया तो प्रकृति ने उसे सान्त्वना दी। रमाशङ्कर तैश में आकर भोर ही खेतों पर चला गया था। परन्तु घर से बाहर होते ही उसका मन पीछे लौटने को मचलने लगा। पत्नी के अभाव की सोई हुई आकांक्षा पर्वत के समान बड़ी होकर उसके हृदय में उद्दीप्त हो गई। उसे मालती में पत्नी का स्वरूप दीख पड़ा और क्षण-भर ही में उसका सारा संसार मालतीमय हो गया। मालती में जैसे उसके प्राणों का लय हो गया हो।

वह बारम्बार अपने को रात के असंयत व्यवहार के लिये धिक्कारने लगा। मालती का अपराध छोटा—बहुत छोटा दीख पड़ने लगा, मालती के प्रति जो उसने अब तक उपेक्षा की, दुर्व्यवहार किया, वह सब सहस्र गुना होकर उसे चारों ओर से दबोचने लगा। उसका मन कहता था—दौड़कर मालती के पैरों में गिर पड़ूँ और कहूँ—

मालती, प्रिये, मुझे सहारा दो, मुझे जीवन दो, मुझे प्रकाश दो, मेरे हृदय को अपने प्रेम के रस से भर दो—शराबोर कर दो।

वह अनमना-सा खेत पर काम करता रहा। पर काम पर उसका मन नहीं लग रहा था। रामनाथ के सम्बन्ध में वह बारम्बार विचारने लगा। क्या वह एकदम ऐसा गिर गया? परन्तु चोर क्या ऐसे होते हैं? उसके मन का पाप उसे क्या ऐसा साहस, इतना धीरज देता? आपस में हँसना-बोलना क्या ऐसा बुरा है? सभी को क्या मेरे जैसा मनहूस बनना चाहिए? क्या कभी रामनाथ की भाँति मैंने उसका आदर मान किया? उससे दिल खोलकर बातें की?

बालकाल के मित्र को मैंने अपने द्वार से खदेड़ दिया। बुरा किया। बहुत देर तक वह इसी विचारों की उधेड़बुन में लगा रहा। अन्त में उससे न रहा गया—वह प्रातःकाल मन में यह ठान कर चला था कि दिन भर घर न आऊँगा। पर समय से पहिले ही लौट आया, उसका मन था कि मालती के पैर छू कर माफी माँग लूँगा। वह बहुत अच्छी है, मुझे क्षमा कर देगी। वह तेजी से लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ घर की ओर लपका। वह सोच रहा था, एक बढ़िया सी साड़ी उसे खरीदनी होगी, एक से काम नहीं चलेगा। २, ३, खरीदनी होगी। इस साल फ़सल बिकते ही सबसे पहिले वह साड़ी ही खरीदेगा।

घर में सजाटा था। द्वार खुले थे, पर उसमें जीवन का चिह्न न था। उसने भाँक कर रसोई घर को देखा—वह सूना ठण्डा पड़ा था। मालती की कोठरी की ओर जाकर देखा—वह खुली सूनी पड़ी है।

अब और आशंका से वह कॉप गया। आखिर मालती है कहाँ? उसका जी हुआ कि पुकारे, पर कभी उसने उसका नाम लेकर पुकारा न था, इस समय भी न पुकार सका। इसी समय उसकी दृष्टि ज़मीन पर सोते हुए राजीव पर पड़ी। उसे उठा कर उसने कहा—“राजीव, वह कहाँ है?”

राजीव ने आँखें मली, फिर रोते-रोते कहा—“बाबा, माँ चली गई ?”

“चली गई ?” रमाशङ्कर के मुँह से अनायास ही ये शब्द निकले । बालक के मुँह ‘माँ’ शब्द सुन कर उसके अङ्ग-अङ्ग में सिहरन दौड़ गई । उसने भरे कण्ठ से कहा—“क्या कहता है रे ?”

“चली गई बाबा, चली गई ।”

“कहाँ चली गई ?”

“यह नहीं बताया ।”

“तूने रोका क्यों नहीं ?”

“रोका था, मैंने कहा—मैं तुम्हें माँ कहूँगा, पर फिर भी नहीं रुकी ।”

“फिर भी नहीं रुकी ?” रमाशङ्कर धम्म से धरता पर बैठ गया । पृथ्वी और आकाश उसे घूमते से दीख पड़ने लगे । वह आँखें फाड़-फाड़कर राजीव को देखने लगा । राजीव ने पिता की गोद में बैठकर कहा—“बाबा, उसे बुला दो, मैं उसके बिना नहीं रह सकता ।”

रमाशङ्कर के रक्त का कण-कण कह रहा था कि मैं उसके बिना नहीं रह सकता । उसने पागल की भाँति, कम्पित वाणी में कहा—

“तूने उसे जाने क्यों दिया ?”

“तुमने बाबा, कल लड़ाई की थी ! तुम बहुत खराब हो ।”

“हाँ बेटा, मैं बहुत खराब हूँ पर उसे इस तरह नहीं जाना चाहिये था, नहीं जाना चाहिये था ।”

धीरे-धीरे रमाशङ्कर उत्तेजित होने लगा । वह भूल गया कि राजीव उसके निकट है । वह जोर-जोर से कहने लगा—“उसे नहीं जाना चाहिये था, वह मेरी है, मेरी ब्याहता पत्नी है, मैंने अग्नि की साक्षी में उससे ब्याह किया है, वह जा कैसे सकती है । नहीं, नहीं, मैं उसके बिना नहीं रह सकता, नहीं रह सकता । धरती, आस्मान, अतल पाताल

जहाँ वह होगी, उसे ढूँढ़ लाऊँगा। उसे आना पड़ेगा। दुनिया की कोई ताकत उसे मुझसे दूर नहीं कर सकती। वह मेरी धर्म की पत्नी, जीवन का सहारा, और घर की रोशनी है, इस तन की, मन की और सर्वस्व की स्वामिनी है, उसे आना होगा। उसे आना होगा....”

उसने खींच कर राजीव को गोद में भर लिया और कसकर छाती से लगाते हुए कहा—“बेटा, वह जहाँ भी गई हांगी, मैं उसे खींच लाऊँगा।”

“वह मेरी माँ है बाबा !”

“हाँ बेटा, माँ है।”

“मैं उसे हमेशा ‘माँ’ कहकर पुकारा करूँगा ?”

“हाँ बेटा।”

“मैं रोज स्कूल जाऊँगा, जिद नहीं करूँगा ?”

“हाँ बेटा।”

“तो बाबा, उसे बुला दो।”

“बुलाऊँगा बेटा, बुलाऊँगा।”

रमाशङ्कर का कण्ठ स्वर आहत गाय के समान हो गया। जैसे वह एकाएक बहुत वृद्ध हो गया हो। उसकी सारी शक्ति समाप्त हो गई हो, उसकी नसों में से एक-एक बूँद रक्त निकल गया हो। वह रोगी की भाँति कराहता हुआ वहीं धरती पर लोट गया। और पुत्र को छाती से लगाकर चौधारे आँसू बहाने लगा।



१४

“अरे भाभी, यह क्या ? तुम यहाँ”

“राम भैया, मुझे आना पड़ा। राजीव को बिलखता छोड़ आई हूँ।”

“बुरा किया भाभी।”

“बुरा-भला जो होना था हो गया। कहो—तुम मुझे आश्रय दोगे ? केवल पुराने वस्त्र और जूठा अन्न। मैं सब भौँति की टहल कर लूँगी।”

“यह क्या कहती हो भाभी, भला ऐसा भी कहीं होता है ? रमा-शङ्कर रो-रोकर मर जायगा, और राजीव, नहीं-नहीं, तुम्हें लौटना होगा भाभी, चलो मैं तुम्हें पहुँचा आता हूँ।”

“राजीव को बहुत दुःख है, पर लाचारी है राम भैया, मैं लौट नहीं सकती, बहुत आस बाँध कर तुम्हारे पास आई हूँ, तुम मुझे आश्रय न दोगे तो मैं अब कहाँ जाऊँगी ?”

“किन्तु भाभी....”

“तो मुझे मामा के तिरस्कृत टुकड़ों पर ही निर्भर रहना होगा राम भैया, जिसने मुझे निस्संकोच रुपयों के लोभ में बेच दिया।”

“नहीं-नहीं, यह बात नहीं है भाभी, पर सोचो तो तनिक, रमा-शङ्कर क्या समझेगा।”

“पर उसने तुम्हारे साथ पशुवत् व्यवहार किया है।”

“वह अज्ञानी जो है, वह उतना ही तो सोच सकता है—जितनी उसकी बुद्धि है, नहीं तो भला भाभी जैसी हीरे की कनी को वह खोता ? उसे रत्न की परख ही नहीं है भाभी।”

“जाने दो इन बातों को, अब तो तुम्हें ही आश्रय देना होगा। तुम्हारे ही भरोसे कदम बढ़ा कर आई हूँ राम भैया।”

“भाभी रामनाथ का तनमन सब तुम्हारे चरणों में है, कुछ दूसरी बात मत समझना। पर तुम सब बातें विचार लो—फिर जो तुम्हारी आज्ञा होगी वही होगा।”

“सब विचार चुकी हूँ।”

“फिर जैसा कहो।”

“मैं अब यहीं रहूँगी।”

“पर-पर घर में दूसरी औरत नहीं है।”

“नहीं है, तो क्या हुआ, मुझे डर किस बात का है, राम भैया।”

“किन्तु....।”

“तुम्हें डर है, समझ गई। तुम भैया शहरी आदमी ठहरे, तुम न डरोगे तो तुम्हारा सभ्य संसार ही कलङ्कित हो जायगा।”

“भाभी, तुम्हें डर नहीं है, तो फिर मुझे क्या डर है। यह घर तुम्हारा है।”

“खूब सोच लो राम भैया।”

“भाभी, अब डराती क्यों हो ?”

मालती ने बगल की पोटली एक ताख पर रखी । वह पलङ्ग की एक पाटी पर बैठ गई । धीरे-धीरे उसने रमाशङ्कर के दुर्व्यवहार की सब कहानी कह सुनाई । राजीव की व्याकुल आकुल व्यथा भी वह वर्णन कर गई । सब सुनकर रामनाथ ने एक गहरी सोंस ली । फिर एकाएक उठ कर वह खड़ा हो गया । बोला—“भाभी, यह एक दम मर्दाना घर है । इसे अब गृहस्थी लायक बनाना होगा । सब चीजों की देख भाल कर लो और कहो—क्या-क्या जुटाना होगा ।”

“सो सब खटपट मैं कर लूँगी, तुम्हें कुछ नहीं करना होगा । पर पहिले पेट की पूजा का सरजाम होना चाहिए, देखूँ क्या है तुम्हारी मर्दानी गिरस्ती में ।” वह उठ कर इधर-उधर देखने लगी ।

“अरे, मैं तो भूल ही गया । तुम शायद बिना ही खाये पिये चल दी हो ।”

“मैंने तो तीन दिन से ही कुछ नहीं खाया है राम भैया ।”

“अरे वाह”, और मालती के बार-बार रोकने पर भी रामनाथ गले में कमीज डालते हुए बाजार की तरफ दौड़ गया ।



“यह न हो सकेगा भाभी ।”

“अच्छी तरह हो सकेगा, मैं स्त्री जाति हूँ, मुझे अधिक नम्र न करो । तुम मर्द हो, साहस करो ।”

“परन्तु मित्र की वस्तु को अपनाने का कैसा साहस ? उसकी रक्षा में जितना चाहिये साहस कर सकता हूँ ।”

कुछ देर मालती चुप रही । फिर उसने रामनाथ की आँख में आँख गड़ा कर कहा—

“इस तरह अपने आपको धोखा देने से फायदा ?”

“कैसा धोखा ?”

“तुम्हारी भूख तुम्हारी आँखों में है, यह क्या तुम नहीं जानते ?”

“तुमने जान लिया ?”

“नहीं तो मैं तुम्हारे पास आती ?”

“तो भाभी इस अकिञ्चन दास को तुम्हें माफ करना पड़ेगा ?”

“माफ़ नहीं कर सकती । तुम्हें दण्ड भोगना होगा, इस अधम स्त्री का भार तुम्हें अपने ऊपर लाद कर ढोना होगा ।”

“कुछ सोचो तो भाभी ?”

“तुम समझते हो, मैं बिना सोचे समझे आई हूँ ?”

“वह तुम्हारा पति है भाभी ?”

“नहीं है ।”

“नहीं है कहने से नहीं बनेगा, फिर वह मेरा बाल्यवन्धु है ।”

“तो इससे क्या ? तुम उसके दो सौ रुपए दे दो । यह तो उसने स्वयं ही कहा था ।

“यह उसका अज्ञान था ।”

“और तुम, जो परसी थाली को ठोकर मार रहे हो, यह तुम्हारा सबसे बड़ा ज्ञान है ?”

“यदि आज मैं उसके जैसा होता ।”

“ठहरो, भावुक न बनो, क्या हम एक दूसरे को प्यार नहीं करते ?”

“करते हैं ।”

“हम एक दूसरे से मिलकर एक होने को बेचैन नहीं हैं ?”

“अवश्य हैं ?”

“फिर सत्य को झूठ से क्यों लपेटा जाता है, प्रिय वस्तु को प्रिय वस्तु से क्यों दूर रखा जाता है ।”

“यह मर्यादा है, यह समाज है, हमें इसके लिये त्याग करना चाहिये ।”

“वह क्या हमने नहीं किया ?”

“अन्त में यदि उसे त्याग दिया तो क्या त्याग किया ।”

“कहती हूँ भावुक न बनो बाबू ?”

“क्या—बाबू ?”

“हाँ ।”

“भाभी, मैं कैसे सँहूँगा । तुम्हारा वियोग जन्म भर सह सकता हूँ, पर तुम्हें अपना बनाकर रमाशंकर को मुँह कैसे दिखाऊँगा ?”

“क्या तुम कोई पाप कर रहे हो ?”

“मूर्ख की मूर्खता से लाभ उठाना पाप ही है ।”

“तो तुम सोच चुके ?”

“क्या नाराज़ हो गई ?”

“तुम ठोकर मारोगे और मैं नाराज़ भी न हूँगी ?”

“मैं ठोकर मारूँगा ? मैं तुम्हें आँखों पर बैठाऊँगा ।”

“तो बैठाओ, मैं तुम्हारे पास आ गई हूँ । मूर्ख मत बनो ।”

“मुझे सोचने दो ।”

“नहीं ।”

“इतनी कड़ी न बनो ।”

“मैं सोच चुकी हूँ । यह यथेष्ट है, हम दोनों अनन्य रूप से एक दूसरे को प्यार करते हैं यह यथेष्ट है । प्रिय, आओ मेरे निकट, यह न भूलो—मैं तन मन से तुम्हारे पास आई हूँ । अपने लिये नहीं, तुम्हारे लिये । अब विलम्ब मत करो, मुझे अपने में लीन कर लो । इससे प्रथम, कि कुछ और घटना घटे—मुझे अपना लो, अपना बना लो, वरना पछताओगे । जन्म-जन्म पछताओगे ?”

“तो आओ फिर मेरी राधा, यह तुम्हारा दास है, तुम्हें देखते ही मेरा पौरुष गल कर बहने लगता है । मेरी प्राण सखी, आओ, इस रखे-सूखे जीवन को हरा-भरा करो ।”

“हाँ, यही कहने योग्य बात है प्रिय, यही ।”

मालती आवेश में आकर उठी और फिर मूर्छित होकर रामनाथ के ऊपर झुक गई ।



१६

रमाशंकर जब राजीव का हाथ थामे हुए रामनाथ के घर पहुँचा, तब उसकी हालत बिल्कुल पागलों जैसी हो रही थी। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त, बिखरे हुए रूखे बाल और सूखा हुआ मुँह, जैसे महीनों से उसने कुछ खाया पिया नहीं है।

उसने रामनाथ को देखते ही कातर कण्ठ से कहा—“वह यहाँ आई है रामनाथ?”

रामनाथ ने क्रोध भरी नज़र से रमाशंकर को देखा। कुछ देर वह जवाब नहीं दे सका। फिर उसने धीरे से कहा—

“हाँ, वह यहीं हैं। मगर तुम क्या चाहते हो?”

“रामनाथ, मैं उसे ले जाने के लिये आया हूँ—उसे मैं ले जाऊँगा।”

रामनाथ कुछ देर चुपचाप रमाशंकर का मुँह ताकता रहा। फिर उसने उठकर आलमारी खोली और दो सौ के नोट निकाल कर रमा-

शंकर के ऊपर फेंककर कहा—“ये रुपये अपने ले जाओ—वह नहीं जायगी।”

परन्तु रमाशंकर ने रुपये नहीं लुए। उनकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं, वह कुर्सी से उठकर रामनाथ के पैरों में लोट गया— उसने कहा—“उसे मुझे दे दो। रामनाथ, मैं उसके बिना नहीं जी सकता, राजीव भी उसके बिना नहीं रह सकता।”

“लेकिन वह तुम्हारे जैसे जानवर के साथ नहीं रहना चाहती। तुमने उसे घोड़ी के मोल में लिया था न, ये रुपये ले जाओ, घोड़ी खरीदकर ठण्डी-ठण्डी हवा खाओ।”

“यह कैसे हो सकता है रामनाथ, वह मेरी पत्नी है, धर्म पत्नी। मेने अग्नि की साक्षी में उससे व्याह किया है भाई।”

“क्या तुमने उसके साथ पत्नी की भाँति कभी व्यवहार किया? आदर दिया, उसके सुख-दुख का खयाल किया?”

“नहीं किया, उसी से तो आज यह दिन देखना पड़ा। पर अब मेरी आँखें खुल गई हैं रामनाथ, तुम पति पत्नी के बीच में बाधा मत दो।”

“पर वह तुम्हारी पत्नी है कहाँ? खरीदी हुई घोड़ी है।”

“भूठ बात है, वह राजीव की माँ है रामनाथ, राजीव की माँ। कुछ तो सोचो, तुम मेरे बाल्य बन्धु हो।”

“तभी तो घर से धक्के देकर निकाल दिया था?”

“मैं अन्धा था, अज्ञानी था, मेरे दोस्त, मेरी ज़िन्दगी मुझे फेर दो। इस गँवार असहाय बन्धु को मारकर क्या लोगे।”

“पर वह तो तुम्हारे साथ जाने को राज़ी ही नहीं है। इसमें मैं क्या कर सकता हूँ, उसे तुम्हारी तरह घर से धक्के मारकर तो निकाल बाहर नहीं कर सकता।”

“वह राज़ी हो जायगी, मैं उसे जानता हूँ वह राजीव के बिना

नहीं रह सकती रामनाथ, तुमने सुख-दुःख मुसीबत में सदा मुझे सहारा दिया है, अब मुझे घर से बेघर मत करो। मेरे प्राण तुम ले लो, पर राजीव को उसकी माँ फेर दो।”

रमाशंकर रामनाथ के पैरों में गिर पड़ा। राजीव भी रोने लगा। रामनाथ देर तक चुपचाप आकाश को ताकता बैठा रहा। कुछ देर बाद उसने मरी सी आवाज़ में कहा—“उठो रमाशंकर, भले आदमी की तरह बैठकर बातें करो।”

रमाशंकर उठकर कुर्सी पर बैठ गया। रामनाथ ने रमाशंकर की विरह-वेदना को समझ लिया। एक गहरी सॉस के साथ उसने अपने हृदय में जड़ पकड़ती हुई लालसा को उखाड़ फेंक दिया, फिर उसने स्थिर होकर करारे स्वर में घर के जनाने भाग की ओर मुँह करके कहा—

“भाभी, दो अभ्यागत द्वार पर आये हैं, उनके लिए ज़रा चाय बना दो।”

इसके बाद मुस्कुराकर उसने राजीव को खींचकर गोद में ले लिया, और रमाशंकर से कहा—“वह बाथरूम है, वहाँ—साबुन पानी और तौलिया सब है, जाकर हाथ मुँह धो डालो। राजीव को भी ले जाओ। जाओ बेटे।”

दोनों बाथरूम में गए। रामनाथ ने भीतर आकर देखा—मालती जड़ बनी बैठी है। उसने कहा—“यह क्या भाभी, चाय नहीं बनाओगी?”

“नहीं।”

“क्यों?”

“देहाती लोग चाय पीना नहीं जानते।”

“पर भाभी, अपने घर में तो मैं उसे चाय अवश्य पिलाऊँगा।”

“तुम समझते नहीं हो....”

“भाभी, तुम भी कुछ समझो, जीवन तो एक ही बार मिलता

हे । रमाशंकर बहुत दुखी है और राजीव ? जाओ, थोड़ा हलुआ और चाय बना दो, रामभैया की बात रखो ।”

“तुम यह क्या कह रहे हो ?”

“जो कहना चाहिए वही ।”

“तो तुम मुझे उसके साथ भेज रहे हो ।”

“यह पीछे विचार लेंगे । बालक बहुत भूखा है भाभी, उसका तो विचार करो ।”

मालती चुपचाप चाय बनाने लगी । रामनाथ ने बैठक में आकर देखा—रमाशंकर चुपचाप सिर नीचा किए बैठा है ।

रामनाथ ने कहा—“रमाशंकर, क्या तुमने सब बातों का आगा पीछा सोच लिया है ?”

“तुम मुझे क्या करने को कहते हो रामनाथ ? क्या मैं अपनी सब ज़मीन जायदाद उसके नाम कर दूँ ? यह कहाँ तो मैं खुशी से तैयार हूँ ।” रामनाथ ने कहा—“रमाशंकर भाई, औरतों के पास न ज़मीन है न जायदाद, न वे कारबारी हाँती हैं, वे दुनिया में दिल लेकर पैदा होती है, मर्द को दिल देती हैं और दिल लेती हैं । दूसरी बातें सब उसके पीछे हैं ।”

“रामनाथ, मैं नहीं जानता था कि मैं उसे प्यार भी करता हूँ । जाने दिल के किस कोने में उसका प्यार छिपा पड़ा था । जब तक वह वहाँ रही, मुझे उसका पता ही न लगा । और अब, जब वह घर से चली आई वह प्यार मुझे मारे डाल रहा है, रामनाथ, उसे मैं प्राणों से बढ़कर प्यार करता हूँ । उसके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा ।”

“रामनाथ कुछ देर चुपचाप सोचता रहा । इसी समय मालती ने वहाँ उपस्थित होकर कहा—“चाय तैयार है ।”

“चलो रमाशंकर भाई, भीतर चलो ।” उसने राजीव को गोद में उठा लिया ।

मालती जाकर रसोई के द्वार पर बैठकर तरकारी काटने लगी । एक चौकी पर तीन जगह चाय और हलुआ सजाकर रखा गया था !

रमाशंकर लड़खड़ाता हुआ आकर चौकी पर बैठ गया । मालती की ओर उसकी आँखें नहीं उठ रही थीं । परन्तु वह अपने को प्रसन्न व्यक्त करना चाहता था । एकाएक उसने राजीव की पीठ में धूँसे का आघात करके कहा—“जा माँ के पैर छू ।”

राजीव डरते-डरते धीरे-धीरे मालती के पास जाकर उसके पैरों में झुक गया ? मालती ने उठाकर उसे छाती में छिपा लिया ।

रमाशंकर ने हँसकर कहा—“सूअर ने माँ-माँ, करके जमीन आस्मान सिर पर उठा लिया, अब पी माँ का दूध, नालायक कहीं का ?”

वह अस्वाभाविक तौर पर जोर से हँस दिया । रामनाथ ने मुस्कुराकर कहा—“चाय पिओ रमाशंकर भाई ?”

“अरे, हम देहाती चाय पीना क्या जानें ।”

रमाशंकर ने रसिकता प्रकट करते हुए कहा—

“शहर में आकर तो पीना सीखना पड़ेगा ।”

रमाशंकर ने सिर हिलाकर कहा—

“चाय पीना ही नहीं, बहुत-सी बातें मुझे सीखनी होंगी रामनाथ ?”

“सीख सकोगे तो अच्छा ही है ।”

“सीखूँगा, ज़रूर सीखूँगा ।”

उसने रस लेकर चाय पीना प्रारम्भ किया । मालती अपने हाथ से राजीव को हलुआ खिला रही थी । रमाशंकर ने छिपी आँखों से देखा—उसका रोम-रोम हर्ष से पुलकित था ।



१७

“अब ?”

“जाना होगा भाभी ।”

“किन्तु तुम्हारा स्वर भीगा हुआ क्यों है ?”

“मैं एक दुर्बल हृदय व्यक्ति हूँ भाभी, हाड़ मांस का आदमी ।
लोहे—इस्पात का नहीं हूँ ।”

“फिर हाथ आई वस्तु को क्यों फेंकते हो ?”

“फेंकता नहीं हूँ भाभी, जिसकी वह वस्तु है उसे लौटाता हूँ ।”

“क्या इतनी ईमानदारी से दुनिया चलेगी ?”

“चल ही रही है, फिर कैसे कहूँ कि मैं ईमानदार हूँ, अपने मन
का कलुष मैं जानता हूँ ।”

“उसे कलुष क्यों कहते हो ?”

“कलुष है, इसी से कहता हूँ ।”

“कलुष क्यों है, जीवन क्या प्रगतिमय नहीं है ?”

“विश्व में केवल जीवन ही तो प्रगतिमय है ।”

“फिर ?”

“भाभी, सुख की नींद सोते-सोते स्वप्न भी तो मनुष्य देखता है ।”

“तो ?”

“स्वप्न तो असत्य होते हैं, उनका अस्तित्व मनोविकारों में होता है ।”

“स्वप्न असत्य है, और उनके देखने वाला ?”

“देखने वाला सत्य है, ज्ञान सत्य है, और ज्ञेय असत्य है ।”

“यह कैसे ?”

“स्वप्न असत्य है, और उसके देखनेवाला सत्य है ।”

“स्वप्न भी तो कभी-कभी सत्य होते हैं ।”

“स्वप्न नहीं भाभी, जीवन । यह दूसरी बात है कि उसपर कभी स्वप्न की छाया पड़ जाय । फिर मन बड़ा ही दुर्बल है, स्वप्न की मोह-कता से अभिभूत हो वह बहक जाता है ।”

“कभी-कभी स्वप्न जीवन का निर्माण भी तो कर जाते हैं ।”

“कदाचित्, परन्तु सच्चा जीवन तो सत्य ज्ञान ही निर्मित करता है ।”

कुछ देर दोनों नीरव स्तब्ध बैठे रहे । फिर एकाएक मालती ने कहा—

“अच्छा राम भैया, मैं लौट जाऊँगी । मैं भी यही समझती हूँ, राजीव को छोड़कर मैं रह नहीं सकती ।”

“तुम रमाशङ्कर को भी न छोड़ सकोगी भाभी, वह अनघड़ है, पर है हीरा ।”

“यदि मर्द, मर्द हो तो वह हीरा है ?”

“रमाशङ्कर निश्चय ही मर्द है ।”

“देखूँगी, मैंने नामर्द समझ कर ही उसे त्यागा था ।”

“गत बातों को स्वप्न समझ लो और आगत का स्वागत करो भाभी ।”

“तुम प्रकृत मर्द हो राम भैया, मैं तुम्हारी बात नहीं टाल सकती ।
उनसे कह दो मैं जाऊँगी ।”

“और भी कुछ कहना होगा ।”

“नहीं कुछ नहीं ।”

“यदि फिर दुर्व्यवहार करे तो ?”

“तो अब तुम्हारे पास नहीं आऊँगी ।”

“इतना रोष भाभी ?”

“रोष नहीं राम भैया, तुम्हारा अब और ऋण न मेल सकूँगी ।”

“उससे कुछ बात करोगी ?”

“नहीं भैया ।”

“तो कब ?”

“जब वे चाहें ।”

“नहीं, जब मैं चाहूँ ।”

“ऐसा ही सही ।”

“कल, एक दिन और मेरे हृदय को उल्लसित करो भाभी । फिर तो यह रूखा सूखा एकाकी जीवन अथ से इति तक भोगना ही है ।”
रामनाथ तेजी से चला गया । मालती जड़वत् बैठी रही ।



१८

मालती जा रही थी। रमाशङ्कर ने बहुत सी चीजें खरीदी थी। नई साड़ियाँ, ब्लाउज, इत्र, और कुछ अनावश्यक चीजें। वह उमंग में भरा था, जाने के लिये वह एक टैक्सी ले आया था। एक चाय का सेट खरीदना भी वह न भूला था। सब चीजें देखकर मालती मुस्कुराई। रामनाथ ने कहा—“भाभी, आज साड़ी तुम्हें मेरे पसन्द की पहननी होगी।”

मालती ने धीरे से कहा—“दो।”

रामनाथ ने एक साड़ी चुन कर कहा—‘यह’

“यह नहीं राम भैया।”

“तब ?”

“वह, जो उस दिन मेरे घर ले गये थे !”

रामनाथ एकदम कुण्ठित हो गया, उसने कहा—“अब बीती बातों की क्या याद ?”

“क्यों ?”

“वह स्वप्न, असत्य था, बीत गया !”

“स्वप्न ही बीत गया रामभैया, स्वप्न की स्मृति तो वैसी ही स्थिर है, कौन जाने यह तुम्हारा सत्य जीवन कब बीत जाय किन्तु स्मृति फिर भी कायम रहे ।”

“किन्तु....।”

“वही साड़ी दो राम भैया ।”

रामनाथ ने साड़ी देते हुए कहा—“रमाशंकर को बुरा लगेगा ।”

रमाशङ्कर ने एकदम भीतर आकर कहा—“क्यों बुरा लगेगा राम भैया ।”

“अरे, यह राम भैया कब से ?”

“बस आज ही से ।”

रामनाथ चुपचाप खड़ा रहा । मालती ने भौंह में बल डाल कर कहा—

“यह मोटर लाने की क्या बात थी ? गाँव की कच्ची सड़क पर टैक्सी चलती है ? कौन दो चार सौ मील जाना था !”

“उस गधे से कहा, राजीव से, मचल गया । अम्मा को मोटर में ले चलूँगा, मोटर में, फिर मैं क्या करता ?” रमाशङ्कर एक बालिका की भोंति शर्म से झेप गया ।

रामनाथ ने कहा—“भाभी, मोटर में बैठोगी तो एक चीज़ की कसर रह जायगी ।”

“क्या ?”

“अंग्रेजी बाजा ?”

“पागल तो नहीं हो गये ।”

“ठहरो भाभी, अभी बन्दोबस्त करता हूँ ।”

मालती और रमाशंकर रोकते ही रहे पर वह बच्चों की भोंति उछलता हुआ चला गया ।

बाजे बज रहे थे। द्वार पर अधिकारी अनाधिकारी आबाल वृद्ध की भीड़ जुट गई थी। लोग पूछते थे, “यह क्या है भाई ?”

तो रामनाथ एँठ कर जवाब देते—

“है तुम्हारा सिर, दीखता नहीं, भाभी जा रही है। हटो रास्ता छोड़ो।”

और जब माथे पर कुंकुम लगाये, पैरों में महावर की लाली मले, नए खरीदे सैंडिल पैरों में पहन, इन्द्रधनुष के रङ्ग की रामनाथ की दी हुई साड़ी पहन, पाँच बीड़ों का बीड़ा मुँह में जबर्दस्ती ठूँसे मालती श्री बिखेरती हुई राजीव का हाथ पकड़ जब रमाशंकर के पीछे-पीछे मोटर तक आई। तो एकाएक हिचक को दूर फेंक उसने रामनाथ से कहा—“यह नहीं होगा राम भैया, तुम्हें चलना होगा, तुम्हारे बिना मैं मोटर में बैठूँगी भी नहीं।”

रमाशंकर ने आग्रहपूर्वक कहा—

“ज़रूर चलना होगा, देखा नहीं—चाय का सेट किसके लिये खरीदा है ?”

“सो क्या मेरे लिए ?”

“नहीं तो क्या ? हम देहातियों को कहीं चाय फायदा पहुँचाती है। वह तो शहरी लोगों के ही पीने की चीज है।”

रामनाथ हँस दिया। रमाशंकर ने राजीव से कहा—क्या चाचा को नहीं ले चलेगा ?”

“चलो चाचा, चलना होगा, वरना माँ नाराज हो जायेंगी।”

“चलता हूँ बेटे, चलता हूँ।” रामनाथ ने अपने पूरे पुरुषार्थ को खर्च करके आँखों के आँसुओं को आँखों की कोर में ही सुखा डाला—और चुपचाप आकर ड्राइवर की बगल में बैठ गया।

मोटर चल दी। बाजे बज रहे थे, मोटर के शोर में वे दूर तक सुनाई देते रहे।

दादा भाई

१६

कमरे की मनहूसियत का आप इसी से अन्दाज लगा लीजिए कि वह जेलर का आफिस था। चारों ओर खूब ऊँची चहारी दीवार से घिरा हुआ, सील और गन्दगी से परिपूर्ण, अन्धकार और अशुभ वातावरण से ओत-प्रोत फाटक पर सज्जीन पहरा। एक मेज, दो-तीन कुर्सी। मेज पर फाइल और रजिस्ट्रों का जमघट, दीवारों पर लटकते हुए सरकूलर।

जेलर एक बूढ़ा, खुशमिजाज, सजन गम्भीर आदमी था। साफ अँग्रेजी पोशाक, क्लीन शेव, सिर नङ्गा, खूँटी पर हैट, मेज पर चाय का सेट। अभी उसने चाय पी थी।

नौ बज गये थे। प्रभात की सुनहरी धूप खिड़कियों और रोशन-दानों से होकर उस जेल के आफिस की शान में चार चौद लगा रही थी। जेलर कुछ देर रजिस्टर में कुछ लिखता और उसके पन्ने उलटता रहा। फिर उसने एक फाइल उठाई। बड़ी देर तक वह उसके कागजों

को बारीकी से देखता और नोट लिखता रहा। फिर उसने घण्टी बजाई। एक सिपाही ने आकर फौजी ढङ्ग पर सलाम बजाया।

जेलर ने बिना उसकी ओर देखे ही कहा—पैंतीस नम्बर कैदी को लाओ।

सिपाही ने 'जो हुक्म' कहा और फौजी ढङ्ग पर सलाम करके चला गया।

जेलर ने उठकर एक सिगरेट जलाई, और सिगरेट पीते हुए इधर-उधर गम्भीर मुद्रा में टहलने लगा।

सिपाही ३५ नं० को ले आया। कैदी की उम्र ३०।३२ साल थी। वह जेल के कपड़े पहने था। कुछ दाढ़ी बढ़ी हुई थी, खूब मजबूत कद्दावर जवान था। गोरा खूबसूरत चेहरा, गहरी काली आँखें, मॉसल गर्दन। वह आकर निर्भय तन कर खड़ा हो गया। उसने जेलर को सलाम नहीं किया।

जेलर कुछ क्षण टहलता और बीच-बीच में कैदी को घूरता रहा। फिर एकाएक रुककर उसने कहा—

“तुम छूट गये।”

जेलर के सङ्केत पर एक सिपाही मेट ने उसके पुराने कपड़े, सलवार और कमीज जिसे पहन कर वह अब से सात साल पहिले जेल में आया था, सामने रख दिये।

जेलर ने साढ़े सात रुपये बक्स से निकाल कर मेज पर रख दिये।

कैदी गहरी आँखों से उन कपड़ों को ताकता रहा। फिर उन रुपयों पर जाकर उसकी नजर अटक गई। एक क्षण मुस्कुराहट उसके होठों पर आई। और वह चुपचाप जेल के कपड़े उतार कर अपने कपड़े पहनने लगा। रुपयों को लापरवाही से उसने कमीज की जेब डाल दिया। और फिर तपाक से उसने जेलर से मिलाने को अपना हाथ आगे बढ़ाया।

सलाम को जगह कैदी को हाथ बढ़ाता देख पहिले जेलर की भौं हैं सिकुड़ गईं। फिर उसने प्रेम से कैदी का हाथ थाम कर हँसते हुए कहा—“देखो नरेन्द्र, तुम एक साहसी आदमी हो, सात साल से तुम मेरे साथ हो ! इस बीच मेरे तुम्हारे बीच कितनी ही भड़प हुई, तुम्हारा पिछला रिकार्ड भी अच्छा न था। पर मैं तुम्हारे गुन भी जान गया था। तुमने दब कर रहना सीखा ही नहीं सो तुम यदि इसी गुण को ठीक-ठीक काम में लाओ, तो अपने आगे के जीवन को सुधार लोगे।....

कैदी के निकट आ उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—“और देखो, अब तुम अपना पिछला पेशा मत करना।”

“अर्थात् डाकेजनी ?”

“डाकेजनी और खून भी।”

“खून तो मेरा पेशा नहीं, वह तो लाचारी में....।”

“नहीं-नहीं, मेरे दोस्त, किसी भी हालत में नहीं। वादा करो, तुम एक भले आदमी की तरह अपना जीवन बनाओगे।”

कैदी ने हँसकर बूढ़े जेलर से हाथ मिलाया और मृदु स्नेहसिक्त स्वर में कहा—“ऐसा ही मैं करूँगा जेलर साहेब !” वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल कर जेल की दीवारों, लोहे के दरवाजों, पहरेदारों आदि पर एक नजर डालता हुआ जेल से बाहर चला गया। बाहर सुहावनी सुनहरी धूप फैल रही थी। दो चार भद्र जन हवाखोरी को निकले थे। उनमें एकाध यौवन पर सवार युगल भी थे। युवतियाँ रङ्गीन तितलियों की भाँति प्रातःकालीन समीर के झकोरे ले रही थीं। एक मजदूर दम्पति ऊँचे स्वर से विरहा गाता जा रहा था। तारकोल की चमचमाती सड़क पर तेज रफ्तार से मोटरें सर्र से दौड़ रही थीं। एक बूढ़ा सड़क के किनारे चाय सिगरेट की अपनी छोटी-सी दुकान सजा रहा था।

कैदी यह सब देखता जा रहा था। सात साल बाद उसके सामने चिर विस्मृत जीवन-संसार के रङ्गीन दृश्य आ जा रहे थे। वह धीरे-धीरे इस मब चलती फिरती दुनियाँ को देखता हुआ और कभी अपने भूत भविष्य पर विचार करता हुआ आगे बढ़ रहा था। वह कहाँ जा रहा है, इस पर उसने विचार ही नहीं किया था। अन्ततः भटकता हुआ वह अचानक रेलवे स्टेशन पर आ पहुँचा। वहाँ ठिठक कर वह चहल-पहल से भरे स्टेशन को कुछ क्षण देखता रहा। फिर कुछ सोचता हुआ आगे बढ़कर टिकट खरीदने को खिड़की पर जा खड़ा हुआ। उसने कमीज की जेब में जितने रुपये थे सब निकाल कर खिड़की के भीतर लापरवाही से फेंकते हुए कहा—

“एक टिकट दिल्ली का।”

टिकट बाबू ने उसे धूर कर सिर से पैर तक देखा। फिर टिकट के दाम से बहुत ज्यादा रुपये देखकर पूछा—“किस क्लास का?”

युवक ने लापरवाही से कहा—“चाहे भी जिस क्लास का।”

बाबू ने रुपये गिने और सेकेण्ड क्लास का टिकट दे दिया। साथ ही कुछ रेजगारी भी वापस कर दी। पर उस रेजगारी पर उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। टिकट पर एक उड़ती नजर डाल उसे जेब के हवाले कर कुछ बड़बड़ाता हुआ-सा वह प्लेटफार्म की ओर चला गया। गाड़ी आने में देर थी। वह भूखा है, इतनी देर में उसे इस बात का ध्यान आया। स्टेशन पर भाय दोस्ट, हलवा पूरी विक्र रहा था। पर जेब में अब एक पैसा भी नहीं था। वह हँसकर अपनी भूख को समझाने लगा। और प्लेटफार्म पर टहलने लगा।

रेल आई। मुसाफिर उतरे चढ़े। वह भी चढ़कर लापरवाही से बर्थ पर पड़ गया। गाड़ी चली। हर स्टेशन पर रुकती हुई। वह सो गया। बीच-बीच में आँख खोलकर बाहर के सीन भी देख लेता।

जब वह दिल्ली पहुँचा तब शाम हो रही थी। अब भूख बहुत लग

रही थी। दिल्ली में उसका कोई दोस्त नहीं था। वह स्टेशन से बाहर आया और कुछ सोचता हुआ एक ओर को चल दिया। सड़क के दोनों ओर खाने पीने की अनेक दुकानें थीं। कुछ होटल भी थे। वह सोचकर बड़बड़ाने और कहने लगा—“क्या आज भी मुझे फिर वही काम करना पड़ेगा, जिसे न करने का जेलर को वचन दे आया हूँ।”

उसने देखा—एक शानदार होटल सामने है। कितनी ही मोटरें खड़ी हैं। फेशनेबुल स्त्री-पुरुष आ जा रहे हैं। वह भीतर घुस गया और एक खाली मेज पर बैठ गया। बॉय आया। उसने खाना लाने का ठाठदार आर्डर दे दिया। खाना आया और उसने इत्मीनान से तृप्त होकर खाना खाया।

नरेन्द्र ने खाना खाकर बैरा को लक्ष्य करके कहा—बिल, बिल ? बैरा बिल तश्तरी में ले आया।

नरेन्द्र ने बिल पर लापरवाही से नजर डालकर कहा—“दवात कलम लाओ।”

दवात कलम आने पर उसने बिल की पुश्त पर लिख दिया, “इस बिल का रुपया फिर कभी दिया जायगा।”

बैरा ने एक बार बिल को और एक बार नरेन्द्र के मुँह को देखकर कहा—“साहेब रुपया....।”

नरेन्द्र ने डगटकर कहा—“जाओ, मैनेजर को यह कागज दे दो।”

बैरा चला गया और कुछ क्षण बाद ही मैनेजर लपकता आया। मैनेजर क्लीनशेव, बूट-सूट से लैस साहबी ठाठ का युवक था।

उसने नरेन्द्र को घूर कर कहा—“बिल का पेमेन्ट क्यों नहीं करते जी ?”

नरेन्द्र ने शान्त मुद्रा से कहा—“तुम्हीं मैनेजर हो ?”

मैनेजर ने कुढ़कर कहा—“जी हाँ !”

“तो पेमेन्ट की बाबत बिल की पुश्त पर लिख दिया गया है, कि फिर कभी दिया जायगा।”

“परन्तु क्यों?”

“क्योंकि इस वक्त रुपया नहीं है।”

“तब खाना क्यों खाया?”

“भूख लगी थी, मुझे उसकी जरूरत थी।”

“तुम्हें सोचना चाहिये था कि यहाँ खाने पर रुपया देना पड़ता है।”

“वह हमने सोचा था, परन्तु याद रखो यहाँ ‘तुम’ कोई नहीं है। ‘आप’ कहिये।”

“गोया, आप एक शरीफ आदमी हैं?”

“शरीफ न होता तो मैं तुम्हारी तिजोरी तोड़कर सब मालमत्ता निकाल ले जाता। फिर महीनों तक तुम्हें थोड़ा-थोड़ा देता रहता और सलामें लेता।”

गर्मागर्म सवाल जवाब सुनकर पास बैठे हुए लोगों की दिलचस्पी बढ़ गई।

एक ने पूछा—“आप कौन हैं?”

“मैं खूनी डाकू हूँ।”

यह वाक्य सुनकर वहाँ उपस्थित सब चौकन्ने होकर उसकी और देखने लगे। कुछ पास आकर खड़े हो गए। मैनेजर के माथे से पसीना छूटने लगा। एक भद्र पुरुष ने आगे बढ़कर नरेन्द्र से पूछा—
“आप कहाँ से आ रहे हैं?”

“जेल से।”

“शायद लम्बी सजा काटी है?”

“पूरे सात साल।”

भद्र पुरुष ने क्षण भर तीखी आँखों से युवक को देखा—फिर पर्स

जेब से निकाल कर मैनेजर से कहा—“वाबैला मत करो भाई, बिल मैं पेमेन्ट किये देता हूँ।”

अपना और युवक का बिल चुका कर भद्र पुरुष ने युवक के कन्धे पर हाथ धर मुस्कुरा कर कहा—

“चलो।”

दोनों बाहर आ मोटर में बैठ गए। राह में बातचीत नहीं हुई।

घर पर आकर भद्र पुरुष ने युवक से कहा—“मेरे साथ काम करोगे?”

युवक ने एक बार उड़ती नजर उस आलीशान कोठी और बढ़िया सामान से लैस कमरे पर डाली—फिर कहा—“क्या आप मेरा विश्वास करेंगे?”

“क्यों नहीं?”

“लेकिन मैं जेल का पंछी हूँ। खूनी और डाकू।”

“तो इससे क्या? मेरी नज़र में तुम एक हौसले वाले जवान हो। तुम यदि चाहो तो अपनी शक्तियों से जीवन पर विजय पा सकते हो?”

“जीवन पर विजय?”

“हाँ, भाई, जीवन पर विजय, जिसे सौ में एक आदमी भी मुश्किल से कर पाता है।”

युवक देर तक खड़ा सोचता रहा। भद्र पुरुष ने कहा—“बोलो, मेरे साथ काम करोगे?”

“करूँगा”, उसने धीरे से कहा। फिर एकाएक उसने आँखें उठाकर भद्र पुरुष की ओर देख कर कहा—“तनखाह क्या मिलेगी?”

“तनखाह कुछ नहीं।”

“तब खाऊँगा कहाँ से?”

“जहाँ से मैं खाता हूँ।”

युवक ने गहरी दृष्टि से वृद्ध भद्र पुरुष को एक बार ताका फिर कहा—“अच्छी बात है।”

भद्र पुरुष ने सन्तोष की साँस लेकर कहा—

“ठीक है, तो अब तुम आराम करो। राधिका तुम्हें तुम्हारा कमरा दिखा देगा। कल मैं तुम्हारी परीक्षा करूँगा।”

“परीक्षा?”

“हाँ, मैं तुम्हें बाघ के मुँह में भेजूँगा।”

“बाघ के मुँह में किस लिये?”

“उसके दाँत गिनने।”

“अच्छी बात है। गिनकर आप को बता दूँगा।”

“एक बात और, इस फर्म में मेरे बाद तुम्हारा ही दर्जा रहेगा।”

युवक ने जवाब नहीं दिया। चुप रहा। भद्र पुरुष ने कहा—“हाँ, तुम्हें क्या कहकर पुकारा जाय?”

“मेरा नाम नरेन्द्र है। पर आप मुझे सरदार कह कर पुकार सकते हैं।”

“अच्छा सरदार, कल तक के लिये विदा।” भद्र पुरुष ने राधिका नौकर को पुकारा। उसके आने पर कहा—“सरदार को ऊपर वाले कमरे में पहुँचा दो। और सब जरूरी सामान जुटा दो।”

आगे-आगे राधिका और पीछे-पीछे सरदार चले गये। भद्र पुरुष कुछ देर सोचते रहे फिर वे भी अपने कमरे में चले गये।



२

“काम बताइये ।”

युवक नरेन्द्र ने आफिस में आकर वृद्ध भद्र पुरुष से कहा । भद्र पुरुष का नाम जगदम्बा बाबू था । वे बड़े भारी ज़मींदार और व्यापारी थे । उनकी एक मिल थी । सरकारी बड़े-बड़े ठेके उन्हें मिलते थे । कुशल व्यापारी होने के साथ-साथ वे बड़े मिलनसार, सहृदय और उदार पुरुष थे । नरेन्द्र की बात सुन, कागजों से दृष्टि उठा उन्होंने कहा—“बैठो सरदार, हाँ, कल मैंने कहा था न कि तुम्हें बाघ के मुँह में भेजूँगा ।”

“जी हाँ ।”

“सो बात यह है नरेन्द्र—नहीं-नहीं सरदार, कि एक अँग्रेज बड़ा बिगड़ैल है । किसी हिन्दुस्तानी को तो वह गिनता ही नहीं, ठोकर से बात करता है । बड़े-बड़े साहसी उसके सम्मुख जाने से घबराते हैं ।”

“कौन है वह ?”

‘एकियक्यूटिव इञ्जीनियर है। छै महिने से बिल पड़े हुये सड़ रहे हैं, पास ही नहीं करता है। जाओ, देखूँ, तुम कुछ कर सकते हो या नहीं।’

“बिल मुझे दीजिये ?”

भद्र पुरुष ने दराज़ से एक फाइल निकाल कर उसके हवाले की। कागज़ात पर एक सरसरी नज़र डालकर वह आफिस से निकला।

साहेब के बँगले पर पहुँच कर उसका उपयुक्त स्वागत साहेब के बैरा और खानसामा ने किया। यह स्वाभाविक बात है कि मालिक के विचारों और रहन-सहन का प्रभाव नौकरों पर पड़ता है, तथा वे भी मालिक जैसे ही हो जाते हैं। साहेब के नौकर भी बड़े असभ्य और जर्बोंदराज थे। उन्होंने कहा—

“साहेब से मुलाकात नहीं होगी, चले जाओ।”

लेकिन नरेन्द्र सिंह चपरासी को पीछे धकेलते हुए सीढ़ियों चढ़कर वराण्डे में जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने उच्च स्वर से कहा—“साहेब को इत्तला दो कि सरदार नरेन्द्र सिंह जरूरी काम से मुलाकात करना चाहते हैं, जाओ जल्दी करो।” नरेन्द्र सिंह के धक्के भिड़की और दबङ्गता से बैरा खानसामा सब भीत चकित खड़े रह गये। शोर सुनकर भीतर से मेंम साहेब बाहर निकल आईं।

उसने सर्पिणी की भौँति फुफकार मारकर कहा—

“वेल, क्या हंगामा है ?”

“मुझे साहेब से मिलना है।”

“मुलाकात नहीं होगा जाओ, गेट आउट मैंन।”

“अरे वाह, मैंने तारीफ सिर्फ साहेब की ही सुनी थी।”

“कैसी तारीफ मैंन।”

“यह कि वह आदमी को देखते ही बुल्डाग कुत्ते की भौँति उसे काटने दोड़ता है। देखता हूँ आप साहेब से कुछ अधिक ही हैं। जंगली बिल्ली की भौँति....”

“तुम ब्लडी मैन, गेट आउट, चला जाना मोंगो।”

फिर उसने बैरा खानसामा को लक्ष्य करके कहा—“इस आदमी को डूर करो, डूर।”

परन्तु बैरा खानसामा तो प्रथम ही सरदार के भय से सहमें खड़े थे। नरेन्द्र ने हँसकर कहा—

“उन बेचारों की कम्बख्ती न बुलवाइए, नाहक उनकी हड्डी पसली टूट जायगी।”

“तुम डाकू है, हम पुलिस बुलावेगा।”

“बुलाइये पुलिस, लेकिन मैं यह पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे मुल्क में औरतें इसी तरह मर्द से बातचीत और व्यवहार करती हैं? यही तुम्हारा शिष्टाचार है?”

“हमको दिक् मत करो मैन, चले जाओ।”

“मैं जिस काम के लिये आया हूँ उसे पूरा करके जाऊँगा। आप साहेब को इत्तला कर दीजिये।”

“साहेब नहीं है, और मैं परेशान हूँ मैन।”

“मैंन नहीं, मेरा नाम सरदार नरेन्द्र सिंह है।”

“साहेब दौरे पर गया है, उनके आने पर तुम आना।”

“ठीक है, पर आपको क्या परेशानी है, वह मैं जानना चाहता हूँ।”

मैम साहेब को बहुत क्रोध आ गया। उसने कहा—“तुमको क्या मतलब है!”

“हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में मर्द लोग औरतों को परेशान नहीं देख सकते। ज्योंही उन्हें मालूम होता है कि कोई औरत परेशान है तो उसकी परेशानी तुरन्त दूर कर देते हैं, फिर इसके लिये, उन्हें चाहे जितना खतरा उठाना पड़े।”

“तुम हमारी क्या हेल्प कर सकता है मैन?”

“मैंन नहीं, सरदार ।”

“वेल सरदार ।”

“हाँ, अब ठीक, आप क्या चाहती हैं ?”

“मुझे रुपयों की जरूरत है ।”

“कितना रुपया ।”

“बहुत, सरदार बहुत ।”

“सुनूँ भी, कितना ?”

“पाँच हजार ।”

“कब रुपया चाहिये ?”

“कल सुबह । बात यह है, साहेब यहाँ नहीं है, और रुपया हाथ में नहीं है, मुझे किसमस की गिफ्ट होम भेजना है, परसों जहाज छूटेगा सरदार, तुम हेल्प कर सकता है ?”

“कल सुबह रुपया आपको मिल जायगा ।”

यह कहकर सरदार तेजी से वहाँ से चल दिया । घर आकर उसने सुना जगदम्बा बाबू उसी गाड़ी से कलकत्ते चले गये हैं । अब वह रुपयों का क्या प्रबन्ध करे ? यह भी नहीं हो सकता कि उस बचनका भङ्ग हो । परन्तु बचन के परिपालन की भी कोई राह नहीं थी ।

तमाम दिन नरेन्द्र इसी उधेड़बुन में रहा कि कैसे रुपयों का प्रबन्ध किया जाय । अन्त में उसके होठों पर एक वक्र मुस्कान आई और उसने अपना संकल्प दृढ़ किया । वह इत्मीनान से रात होने की प्रतीक्षा करने लगा । और रात होने पर वह शान्त भाव से आफिस में चला गया । वहाँ जाकर सेफ को तोड़ डाला और उसमें से दस हजार रुपये के नोट निकाल कर जेब में रख लिये । इसके बाद वह वैसी ही शान्ति और इत्मीनान से आफिस से आकर अपने कमरे में आराम से सो गया ।



प्रातःकाल होते ही वह साहेब के बँगले पर पहुँचा। मेंम साहेब सुनते ही निकल आईं। आज वे कल वाली गुनगुनी मेंम साहेब नहीं थीं, मीठी और गुलगुली मेंम साहेब थीं। नरेन्द्र को देखते ही उसने कहा—“रूपया लाया सरदार ?”

“यह लो, कुछ ज्यादा ही ले आया हूँ कि कमी न हो जाय, दस हज़ार हैं।”

“वण्डरफुल, सरदार, तुम वण्डरफुल मेंम है, हम बहुत खुश है, बहुत खुश।”

नरेन्द्र ने इस खुशामद पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। उसने कहा—“अच्छा जाता हूँ।” और वह चल दिया।

परन्तु मेंम साहेब ने उसे रोककर कहा—

“नहीं, नहीं सरदार, ठहरो, मिहरबानी करके हमारे साथ बाज़ार चलकर सब चीज़ खरीदवा दो।”

सरदार और मेंम साहेब ने घूम फिर कर बहुत सी चीजें खरीदीं, घर आकर उनके पार्सल बनाए । और उन्हें डिस्पैच किया । सब काम समाप्त करके सरदार जब घर चलने लगा तो मेंम साहेब ने लक्स साबुन के समान अपना सफेद सुकोमल और सुगन्धित हाथ बढ़ाकर कहा—“वैरी वैरी थैन्कस सरदार, कल सुबह तुम साहेब के साथ चाय पीने आना ।”

“देखा जायगा ।”

“नहीं सरदार, वादा करो, आओगे ?”

“अच्छा ।”

और वह वहाँ से चल दिया ।





कोठी पर पहुँच कर सरदार ने देखा—वहाँ अजब हंगामा खड़ा हो गया है। आफिस में पुलिस सदल बल उपस्थित है। थानेदार लाल-पीले होकर लोगों को डोंट-डपट करते हुए तफतीश कर रहे हैं। बहुत से लोग इकट्ठे हैं। घर के सब नौकर-चाकर भी उपस्थित हैं।

सरदार को देखते ही एक आफिस कर्मचारी ने उनके सम्बन्ध में थानेदार के कान में कुछ कहा—वह सुनकर थानेदार साहेब ने आँख उठाकर सरदार की ओर देखा और फिर कहा—“आइये सरदार साहेब, आपकी तो यहाँ बड़े जोरों से इन्तजारी हो रही है। आप कहाँ तशरीफ ले गये थे ?”

“मैं काम से गया था, मगर यह क्या हंगामा है ?”

“चोरी हुई है सरदार जी, चोर सेफ तोड़कर दस हजार रुपया चुरा ले गया है ?”

“वाहियात, चोरी ओरी कुल्ल नहीं हुई है, थानेदार साहेब, आप नाहक हो हल्ला मचा रहे हैं, आप घर जाइये।”

“वाह सरदार, चोर सेफ तोड़कर १० हजार रुपया निकाल ले गया है। यह रिपोर्ट है।”

“किसने रिपोर्ट की है?”

“आपही के आदमी ने।”

“परन्तु चोरी नहीं हुई है भाई।”

“चोरी नहीं हुई है?”

“जी नहीं—वह रुपया तो मैंने निकाला है।”

“आपने?”

“जी हाँ मैंने।”

“आप यह कहना चाहते हैं कि आपने सेफ तोड़कर दस हजार रुपया सेफ से निकाल लिया है?”

“तो क्या हुआ?”

“साहेब पहेली न बुझाइए, साफ-साफ कहिये।”

“अजीब आदमी हैं आप, कह तो रहा हूँ?”

“सेफ आपने तोड़ा?”

“जी हाँ।”

“और दस हजार रु० भी आपही निकाल ले गये?”

“हाँ भाई हाँ।”

“किसलिये?”

“जरूरत थी, इसलिये।”

“ताला क्यों तोड़ा?”

“क्योंकि ताली पास न थी।”

“अजब जीवट के आदमी हैं आप।”

“हूँ तो, आपको क्यों डाह होती है?”

“जी नहीं, परन्तु क्या मैं आपकी हिष्टी जान सकता हूँ ?”

“कैसी हिष्टी ?”

“आप कब से यहाँ नौकर हैं ।”

“मैं नौकर नहीं हूँ ।”

“तब कौन हैं ?”

“कोई हूँ, आप से मतलब ?”

थानेदार ने तैश में आकर कहा—“देखिये सरदार, सीधे-सीधे बात का जबाब दीजिये, और यह मत भूलिये कि आप एक पुलिस अफसर से बात कर रहे हैं ।”

सरदार ने हँसकर कहा—“भूल कैसे सकता हूँ । यह आपका सुन-हरा भण्वा भूलने दे जब न ।”

“मज़ाक मत कीजिये, मेरे सवालों का ठीक-ठीक जबाब दीजिये ।”

“अच्छा पूछिये ।”

“आप यहाँ कब से हैं ?”

“कल से ।”

“इससे पहिले आप कहाँ थे ?”

“जेल में ?”

“क्या जेल में ? कितने दिन ?”

“सात साल से ?”

“ओफ्, किस जुर्म में ।”

“डाके और खून के जुर्म में ।”

“तो यों कहिए, आप पूरे गुरुघंटा है ।”

“जरा तमीज से थानेदार साहेब ।”

“अच्छा-अच्छा, वह स्पया कहाँ है, सीधे-सीधे बतादो ।”

“खर्च हो गया ।”

“अजी, कैसे खर्च हो गया ? आप क्या लाट साहेब हैं, कि दो घण्टे में दस हजार रुपया खर्च हो गया ? बताइए रुपया कहाँ है ?”

“आपको उस रुपये से क्या सरोकार है ?”

“रुपया चोरी गया है, और मैं बहैसियत पुलिस अफसर उसकी तफतीश कर रहा हूँ ।”

“खूब आदमी हैं आप, कहता हूँ मैं ले गया हूँ और आप चोरी-चोरी बके जाते हैं ।”

“आप गोया चोर नहीं है, मालिक हैं ।”

“मालिक तो हूँ ही ।”

“अच्छा मालिक साहेब, मैं आपको चोरी के जुर्म में गिरफ्तार करता हूँ । सिपाही, हथकड़ी लगाओ ।”

“मैं जानता हूँ कि आप लोगों से मगज़ चट्टी करने से कोई लाभ नहीं । पर आप बिना बड़े बाबू से पूछे मुझे गिरफ्तार नहीं कर सकते ।”

“अपना काम मैं जानता हूँ, आपको नसीहत देने की आवश्यकता नहीं, चलिये ।”

“चलिये फिर थानेदार साहेब, एक दिन आपकी मिहमाननवाजी का भी लुप्त उठा लिया जाय ।”

सरदार ने हँसकर कहा —और हँसता हुआ उठ खड़ा हुआ ।

थानेदार साहेब विजय गर्वित से दलबल सहित चले गए । लोग जितना मुँह उतनी बात कहते और सरदार के दुःसाहस पर भोंति-भोंति के आक्षेप करते चले गए ।



तार पाकर राय साहेब कलकत्ते से आकर सीधे थाने में गये ।
 बयान लिखाया कि मेरी आज्ञा से ही सेफ तोड़ा गया था तथा रुपया मेरे
 ही काम में आया था । लाचार थानेदार साहेब को छोड़ना पड़ा ।
 उसे मोटर में बैठा कर राय साहेब ने कहा—“सेफ क्यों तोड़ा ?”

“ताली नहीं थी ?”

“रुपयों की ऐसी क्या ज़रूरत आ पड़ी ?”

“आप क्या मुझसे जबाब तलब कर रहे हैं ?”

“नहीं-नहीं सरदार, अच्छा जाने दो, परन्तु मुझसे क्यों नहीं
 कहा ?”

“आप तो चले गये थे ?”

“खैर, लेकिन मैं बहुत ज़रूरी काम छोड़कर हवाई जहाज से
 दौड़ा आया हूँ । मुझे फिर कलकत्ता जाना होगा ।”

“कब ?”

“आज ही, क्या वे बिल पास हुए ?”

“आज हो जावेंगे, मैं अभी जाता हूँ ।”

“मेरे रहते पास हो जाय तो उत्तम है । जाओ, परन्तु नहा खा कर ।”

×

×

×

×

तीसरे पहर जब सरदार ने साहेब के बँगले पर कदम रक्खा— तो साहेब और मेंम दोनों ने बड़े तपाक से बाहर आकर हँसते हुए उससे हाथ मिलाया और स्वागत किया । सरदार ने कहा—“कल मैं वादे के अनुसार नहीं आ सका, इसका बहुत अफसोस है ।”

“कल क्यों नहीं आया सरदार ?”

“एक बहुत ज़रूरी काम लग गया था ।”

“तुम जेल में बन्द हो गया ठा सरदार”, मेंम साहेब खिलखिला कर हँस पड़ी । साहेब भी हँसा सरदार भी हँस दिया । साहेब ने कहा—“हमको तुम्हारा स्पिट बहुत पसन्द है । सरदार हम स्काटलैण्ड का आदमी है, तुम्हारे इस मुलुक में बहुत दब्बू और डरपोक आदमी रहता है ।”

“सदियों की गुलामी ने उन्हें ऐसा बना दिया है साहेब ।”

“ऐसा ही होता है ।”

बैरा चाय टेबुल पर रख गया । मेंम साहेब ने स्वयं प्याला बनाकर सरदार को पेश किया ।

चाय पी चुकने पर मेंम साहेब ने बिल सरदार को देकर कहा— “ये बिल पास कर दिये गये हैं सरदार, और साहेब ने तुम्हारे लिये कुछ और काम भी दिया है ।”

सरदार ने देखा—कोई बहुत बड़ा कन्ट्राक्ट है, जिसके सब कागजात टाइप किये हुये पहले से तैयार थे । साहेब के सङ्केत पर सरदार ने उनपर दस्तखत किये । साहेब ने कहा—

“सरदार हमने सरकार से शिफारिस की है कि रुपया भी तुमको पेशगी मिलता जायगा। तुम यदि होशियारी और मिहनत से काम करेगा तो इसी एक काम में तुम अपना कैरियर बना लेगा। और हम हमेशा तुम्हारी मदद करेगा सरदार, मैं साहेब तुमसे बहुत-बहुत खुश हैं।”

नरेन्द्र ने उठकर साहेब और मैं दोनों से हाथ मिलाया। उन्हें धन्यवाद दिया और चला आया।

जगदम्बा बाबू ने बिलों को पास हुआ देखा तो वह बहुत खुश हुये। और फिर जब नये काम के कन्ट्राक्ट को देखा तो आश्चर्य-चकित रह गये। उन्होंने कहा—“सरदार, मैंने २० वर्षों में भी इतना नहीं कमाया, जितना तुम इस एक काम में कमा लांगे। यह लो, यह तुम्हारा ही काम है।”

“जी नहीं, यह आपकी सेवा में मेरी तुच्छ भेंट है। और पहली भेंट है, इन्कार मत कीजिये।”

“लाखों के वारे न्यारे हैं सरदार।”

“तो क्या हुआ। मुझे खाने का तो अब कुछ फिक्र ही नहीं है। फिर आप जैसे सद्दय और उदार बुजुर्ग की सेवा बिना भाग्य के नहीं मिल सकती।”

कठोर सरदार की आँखें गीली हो गई और वह तेजी से जगदम्बा बाबू के सामने से चल दिया।



६

कलकत्ता जाने से प्रथम राय साहेब सरदार को बहुत-सा काम दे गये । सरदार तमाम दिन आफिस में बैठ वह काम करता रहा । नहाने-खाने की भी उसने परवाह नहीं की । शाम की चाय पीकर वह इधर-उधर कोठी में टहलने लगा । कोठी बहुत बड़ी और आलीशान थी । वह उसके प्रत्येक कमरे और दालानों को घूम-घूमकर देख रहा था । अनेक प्रकार के विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे । उसका अद्भुत भूत और भविष्य उसके सम्मुख मूर्तिमान हो रहा था । किस प्रकार परिस्थितियों में फँसकर उसे खून और डाके के जुर्म में सात साल जेल की मनहूस कोठरियों में जीवन व्यतीत करना पड़ा, और अब न जाने भाग्य उसके साथ कैसा खेल खेल रहा है । वह लखपती होने का स्वप्न देख रहा था । पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था । कभी हास्य की रेखा उसके होठों पर फैल जाती, और कभी चिन्ता से उसका माथा सिकुड़ जाता । टहलते-टहलते वह कुछ ऐसा भावमग्न हो गया

कि अपने आपही उसके पैर आगे बढ़ गये, और वह जगदम्बा बाबू के जनाने हिस्से की ओर बढ़ गया। अभी जगदम्बा बाबू के परिवार के सम्बन्ध में उसे कुछ भी पता न था कि कौन-कौन है।

परन्तु जगदम्बा बाबू की केवल एक ही पुत्री थी, जो कालेज में पढ़ती थी। उसका नाम था सुधा। पर उसे सरदार ने अभी देखा नहीं था।

एकाएक सुधा को सामने खड़ी देखकर सरदार अकचका गया। सुधा के सौन्दर्य और माधुर्य को देखकर नहीं, प्रत्युत यह देखकर, कि वह उसके प्राइवेट कमरे के सामने जा पहुँचा है, जो वास्तव में अनुचित कहा जा सकता था।

सुधा ने उसे सन्देह से देख क्रोध करके कहा—

“आप यहाँ क्या कर रहे हैं?” वास्तव में वह सरदार को अपने कमरे के ठीक सामने देख घबरा गई थी। वह सोचने लगी—यही तो वह डाकू है जिसने उसके पिता की सेफ तोड़ कर १० हजार रुपया निकाल लिया था।

वह यह भी सुन चुकी थी कि वह कोई जेल का पंछी है। अब एकाएक सन्ध्या के समय अपने प्राइवेट कमरे के सामने उसे देख उसका मन सन्देह और भय से पूर्ण हो जाना स्वाभाविक था।

सरदार भी परिस्थिति को समझ कर घबरा गया। उसने कहा—
“मुझे अफसोस है....”

“पर मैं यह पूछती हूँ, तुम यहाँ क्या कर रहे हो? किसके हुक्म से यहाँ आये?”

“मैं अनजान में आ गया। मुझे बहुत अफसोस है, आप....”

“पिता जी यहाँ नहीं हैं, इसलिये यह सुयोग देख लिया। फिर कोई सेफ तोड़ने का इरादा है?”

“आप बड़े बाबू की लड़की हैं?”

“तुम्हारा इतना साहस, कि यहाँ बिना सूचना के चले आये ?”

“लेकिन मैं माफी तो माँग रहा हूँ ।”

“अगर मैं देख न लेती तो शायद हाथ साफ करते ।”

“आप नाहक बिगड़ रही हैं श्रीमती जी ।”

“मैं कहती हूँ चले जाओ, निकल जाओ ।”

“लेकिन मेरी बात तो सुनिये....”

“क्या नौकर को बुलाऊँ ?”

“मैं जाता हूँ, मगर....”

“पक्के बेशर्म हो ।” उसने चिल्लाकर नौकरों का बुलाया । परन्तु नौकरों के वहाँ आने से प्रथम ही सरदार लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वहाँ से चल दिया । उसका चलना रुका नहीं । वह कोठी से बाहर निकल आया । अँधेरी सूनी सड़क पर खड़ा होकर एक बार पीछे फिर कर उसने बिजली की दीपावलियों से जगमग उस भव्य कोठी पर दृष्टि डाली । सुधा की क्रुद्ध किन्तु मोहमयी मूर्ति जैसे उसकी आँखों में गड़ गई हो । वह अपनी मूर्खता पर और जड़ भाव पर पछुता रहा था । परन्तु अब उसका आत्म-सम्मान उसे उस घर में प्रविष्ट होने से रोक रहा था । वह जगदम्बा बाबू की सहृदयता को जानता था, फिर भी सुधा के हृदय की घृणा और तिरस्कार को उसने देख लिया था । उसने सोचा—नहीं-नहीं, अब उस घर में जाने का क्या काम है । वृद्ध जगदम्बा बाबू की कृपा और उदारता का पूरा बदला चुका दिया गया । अब उनकी लड़की की विष-दृष्टि में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है । बहुत बड़ा संसार है, कहीं न कहीं उसे खड़े होने का स्थान अवश्य मिल जायगा ।

उसके पैर उसे आगे बढ़ा ले चले । वह कहाँ जा रहा था, इसका भी उसे कुछ भान न था । अभी क्षण पर पहिले जो वह कल्पना के महल बना रहा था—ढह चुके थे । अब सत्ता और एकाकी जीवन

उसके सम्मुख था, वह चलता ही चला गया। सड़क पर सड़क पार करता हुआ। उसने हार्न नहीं सुना और एक मोटर की चपेट में आ गया। बड़ी दूर तक वह मोटर के साथ घिसटता चला गया। मोटर रुक गई। बहुत आदमियों की वहाँ भीड़ लग गई।

मोटर से एक युवती ने उतर कर उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। दो और अघेड़ आयु के व्यक्ति भी मोटर से उतर कर उसे झुक कर देखने लगे।

दोनों की पोशाक बढ़िया थी। पर दोनों ही नशे में भ्रम रहे थे। एक ने कहा—“भाई शङ्कर, बड़ा बुरा हुआ, चण्डूल कहाँ से कहाँ आ मरा।”

दूसरे ने झोंक में आकर कहा—“भ्यों, छोड़ो भी, चलो अपने रास्ते। सड़क पर तो मोटर चलाना भी मुश्किल हो गया है।”

“नहीं, नहीं, भाई शङ्कर—इसे अस्पताल पहुँचाना चाहिये। चलो इसे अस्पताल पहुँचा दें।”

युवती ने कहा—“नहीं, नहीं, मेरे घर ले चलो। अस्पताल में मनुष्य के जीवन का कोई मूल्य नहीं समझा जाता। हमें स्वयं इसकी सेवा करनी चाहिये।”

दोनों रईसों ने कहा—“यह भी ठीक है भाई शङ्कर, कहा है न, जो मारता है, वही जिलाता भी है। इसे मोटर में डालकर ले चलो।” युवती एक वेश्या थी। उसका नाम केसर बाई था। आयु उसकी २५ वर्ष, बदन छरहरा, नेत्रों में वेदना, मस्तिष्क में उलझन, तथा प्रकृति में गम्भीर थी। केवल गायन से खास-खास लोगों का मनोरञ्जन करती थी।

केसर का घर एक साफ-सुथरा छोटा-सा घर था। एक कमरे में चौदनी बिछी हुई थी, उसपर मसनद सजे थे। उत्तेजनात्मक चित्र, और साजिन्दे हाजिर थे। जो इस बात के परिचायक थे कि यह वास्तव में एक वेश्या का कमरा है।

सब लोगों ने नरेन्द्र को उठा ऊपर कोच पर ला लिटाया। उसे अधिक चोट नहीं लगी थी। सिर पर केसर ने पट्टी बाँध दी। दोनों रईस तमाशबीनों ने एक पैग शराब पिलाई, स्वयं भी पी। उसे होश-हवास में देखकर केसर ने पूछा—“अब आपकी तबियत कैसी है?”

“मैं तो अच्छा हूँ, कुछ चोट नहीं लगी। शायद वह मोटर आपही की थी।”

केसर ने लजित होकर कहा—“जी हाँ।”

एक रईस ने कहा—“भई हो किस्मत के धनी, लो इसी बात पर एक पैग पियो। बदन में गर्मी आ जायगी।”

उसने भर कर एक पैग नरेन्द्र की ओर बढ़ाया।

दूसरे रईस ने कहा—“और ताकत भी! बहुत बढ़िया चीज है।” वह स्वयं उँडेल कर पीने लगी।

“इसमें क्या शक?” उसने भी एक पैग भर कर कहा—“तो केसर बाई, इस नये दोस्त के बेजरब बच जाने की खुशी में एक गर्मागर्म चीज़ सुना दो।”

केसर ने नरेन्द्र की ओर देखकर कहा—“इन्हें कोई उज्र न हो तो।”

नरेन्द्र ने उठते हुए कहा—“तो मैं जाता हूँ। आप लोग....”

दोनों रईसों ने तपाक से उसकी बाँह पकड़ कर कहा—“वाह, दोस्त, यह भी कोई बात है।”

केसर ने कहा—“बैठिये, तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं। आपका वतन?”

“कहीं भी नहीं।”

दोनों रईस इसपर खिलखिला कर हँस पड़े। एक ने कहा—“खूब, खूब।” उन्होंने एक एक जाम चढ़ाया और कहा—“सच है, इस सरायफानी में वतन किसी का कहीं भी नहीं। तो लो दोस्त, इसी बात पर एक पैग।” उसने पैग भरकर बढ़ाया।

नरेन्द्र ने पैग ले लिया । पीकर उठते हुए उसने कहा—“जाता हूँ ।”

केसर ने उसकी ओर गौर से देखकर कहा—“नहीं, आज रात यहीं आराम कीजिये । सुबह चले जाइये ।”

दोनों रईस उल्लल पड़े । उन्होंने दुहत्तड़ मुह पर मारकर कहा—
“पौ बाहर हैं यार, जमे रहो, जमे रहो । हाँ, तो केसर चाई, अब हो जाय ठाठ से ।”

केसर ने साज़िन्दों को संकेत किया और नरेन्द्र अलस भाव से मसनद पर लुढ़क गया ।





प्रातःकाल भोर तड़के उठकर नरेन्द्र ने केसर को देखकर कहा—
“नमस्ते, बहुत-बहुत धन्यवाद । अब जाता हूँ ।”
“क्या चल दिये ? इतनी जल्दी ?”
“हाँ, जाता हूँ ।”
“क्या आप नाम भी नहीं बतायेंगे ?”
“क्यों नहीं, मैं नरेन्द्र हूँ।”
“आप जरूर परदेसी हैं । पर क्या यहाँ कोई आपका दोस्त या रिस्तेदार है ?”
“नहीं ।”
“आप कौन हैं ? यह मुझे नहीं बतायेंगे ?”
“फिर कभी बता जाऊँगा ।”
“परन्तु अब आप कहाँ जा रहे हैं ?”
“कहीं काम की खोज में ।”

“उसके बाद ?”

नरेन्द्र ने केसर की ओर ध्यान से देखकर कहा—“उसके बाद ?”

“रात को कहाँ रहियेगा ?”

“जहाँ सम्भव हुआ ।”

“यहीं आ जाइये ।”

“न हुआ तो आ जाऊँगा ।”

“यह नहीं, वादा करो ।”

“अच्छा (कुछ रुककर) नमस्ते ।”

“नमस्ते ।”

वह धीरे-धीरे सीढ़ी पार कर सड़क पर जा पहुँचा । बड़ी देर तक निरुद्देश्य सड़कों पर भटकते-भटकते वह दोपहर के समय एक बहुत बड़ी मिल के सामने जा पहुँचा ।

चारों तरफ इधर-उधर आदमियों की भीड़-भाड़ थी । सैकड़ों मजदूर, स्त्री-पुरुष आ-जा रहे थे । कुछ खोनचे वालों के पास खड़े खा-पी रहे थे । धीरे-धीरे नरेन्द्र वहाँ जा पहुँचा । एक अंधेड़ मजदूर पर उसकी दृष्टि पड़ी । उसका गंजा सिर, पिचका मुँह, अस्त-व्यस्त मूँछें और पक्का रंग था । उम्र पचास साल, मस्त तबियत, कपड़े लापरवाही से पहने हुए, वह बीड़ी पीता धीरे-धीरे जा रहा था ।

उसपर नज़र पड़ते ही नरेन्द्र आनन्द से फूल उठा, उसने लपक कर जोर से पुकारा—“चचा, ओ चचा, मटरू चचा ?” मटरू चचा ने उलट कर देखा और नरेन्द्र को पहचान कर उससे लिपट गया । उसने हँसकर कहा—“अरे बाह मेरे शेर ! बाहर कब आए ?”

“समझ लो आही रहा हूँ ।”

“रात कहाँ रहे ?”

“स्वर्ग में ।”

“तब आज नर्क में रहना होगा ।” मटरू ने नरेन्द्र की पीठ ठोकी, फिर बीड़ी देकर कहा—“बीड़ी पियो बरखुरदार ।”

“बीड़ी नहीं चचा, काम दिलाओ ।”

“काम की क्या कमी । यहाँ चचा का राज है । जानते हो, सब साले मटरू चचा के नाम से काँपते हैं । पर आज चाची के हाथ के पराठे खाओ । काम की बात कल ।”

“कल क्यों चचा ?”

“आज छुट्टी है । वह साला मैनेजर....एक दिन उसका सिर मैं हथौड़े से फोड़ूँगा नरेन्द्र, याद रखना ।”

“इतना गुस्सा चाचा, क्या फिर उसी बूढ़े जेलर के पास जाना चाहते हो ?”

“ओह, उस बूढ़े खूँसट को तो मैं भूल ही गया । कैसा है वह बूढ़ा, अभी तक वहीं कायम है ? मगर आदमी खूब है ।”

“वहीं तो है चचा, तुम जब से जेल से छूटे हो यहीं लगे हो ?”

“कुछ दिन भटकता रहा, फिर तुम्हारी चाची को लेकर यहीं आ गया ।”

“और पुराना काम ?”

“गिरहकटी ? नहीं भाई, छोड़ दी ।”

“और यहाँ मेहनत मजूरी में खुश हो ।”

“मेहनत कौन साला करता है । जेल में जैसे मेट हवलदार थे, वैसे यहाँ भी मेट सरदार हैं । मैनेजर से लेकर मजूर तक सब चचा की जूती उठाते हैं ।”

“फिर तो रङ्ग ही रङ्ग है चचा ।”

“नहीं तो क्या ?” उसने जेब खनखनाई—“आज तनखा मिली है । जेब गर्म है । आओ कुछ खाओ, पियो । अरे यार, जिन्दगी में है क्या, खाना-पीना और मौज करना ।”

“फिर मर जाना ।”

“मरने का क्या डर ।” उसने नरेन्द्र के कन्धे पर हाथ धरकर कहा—“घर चलें ।”

दोनों चल दिये । कारखाने के बन्द फाटक की खिड़की से पार होकर मज़दूरों की भोंपड़ियों की ओर । राह में टूटे-फूटे काठ और टीनों की लम्बी बस्ती थी । जो पंक्तिबद्ध थी ।

नल पर पानी के लिये आई औरत मदों में गाली-गुफ्ता लड़ाई हो रही थी । कुछ लड़के नङ्ग धड़ङ्ग खेल-कूद रहे थे ।

दोनों व्यक्ति एक टूटे टीन के घर के सामने जा पहुँचे । द्वार पर टाट का फटा परदा पड़ा था ।

मटरू ने पर्दे की ओर देखकर ऊँचे स्वर से कहा—क्या कर रही हो, देखो तो यह कौन आए हैं ।”

दोनों पर्दा उठाकर भीतर गए । नरेन्द्र ने देखा—“एक काली मोटी अघेड़ औरत, फुटबाल-सा मुँह, मोटी-मोटी जुड़ी भौंहें, गोल-गोल आँखें, सन्देह और क्रोध से नरेन्द्र को देख रही है ।

मटरू ने कहा—“अरे नरेन्द्र, यह है तेरी चाची....”

चाची ने आँखें नचाकर कहा—“फूटे करम चाची के, मुआ चोर उठाई गीर, कहता है चाची । जैसे सात भोंवर डालकर व्याह लाया हो । घर वाली बनाता है, घर वाली ।”

“तो नाराज़ क्यों होती है । पूरे छै महीने से मेरे ही घर में है या नहीं ।”

“सो घर में हूँ तो क्या तेरे लिए जात खो दूँगी रे चोर । क्या मैं तेरे हाथ का छुआ खाती हूँ, या चौके में तुझे घुसने देती हूँ । मैं ठाकुर की लड़की, तेरी जात-पाँत का ठीक न ठिकाना, मुँए जेल के पंछी ।”

“अरे वाह रे ठाकुर की बेटी ।”

“जात बखानेगा तो अच्छा न होगा कहे देती हूँ ।”

“चल रहने दे । तेरे सिर की कसम राधा, मैं तो हँसी कर रहा था ।”

“मेरे मुँह में लूका ।”

“देखा नरेन्द्र, इस ठाकुर की लड़की का गुस्सा । इसे इतना माल मलीदा खिलाता हूँ कि सारी तनखा उसी में उड़खू हो जाती है । पर इसका मिजाज ही नहीं मिलता ?”

राधा ने—पुतलियों और भौंहों को एक बार दायें और एक बार बायें घुमा कर तथा कण्ठ स्वर ऊँचा करके कहा—“तनखाह शराब और लानतान में उड़ाता है या मेरे खाने में । और मैं जौं तेरा चूल्हा भोंकती हूँ रे । तेरी सात पुरखों ने भी किसी औरत को ब्याहा था ?

मटरू ने एक दम उछल कर राधा का भोटा पकड़ कर कहा—
“हरामजादी, पुरखों तक जायगी ।”

राधा कपड़ा संभालती और हॉफते-हॉफते बोली—“और हराम-जादे, तू मेरा पेट नापेगा ?”

उसने मटरू के हाथ में काट खाया, दोनों में गुथम-गुथा हांने लगी । दो चार पड़ोसी मज़दूर स्त्री पुरुष बीच में आ जुटे । बालक हँसते हुए तालियाँ पीटने लगे । कुछ वाह-वाह कहने लगे । कुछ अरे रे—यह क्या—कहने लगे । पास पड़ोस की स्त्रियाँ मुँह पर कपड़ा दे कर हँसती रहीं ।

नरेन्द्र ने सब लोगों को दूर भगा कर दरवाजा बन्द कर दिया । फिर दोनों को छुड़ाकर कहा—“चचा मटरू, बस निकालो तनखा के रुपये इसी बात पर, चाची अभी खुश हो जायगी ।”

राधा ने ललचाई नज़र से नरेन्द्र को देख करके कहा—“मेरी जूती खुश होती है ।”

नरेन्द्र ने मटरू की जेब से रुपये निकाल कर राधा की भोली में डाल दिये । मटरू एक ओर बैठकर बीड़ी सुलगाने लगा ।

रुपये देखते ही राधा सचमुच खुश हो गई। उसने झपट कर रुपये गिनते-गिनते कहा—“देखूँ-देखूँ कितना बचा, कितना उड़ाया। रुपये गिनकर बोली—“आज पी नहीं !”

नरेन्द्र ने कहा—“मैं पीने दूँ, तब न ? चाची, मटरु चाचा हैं अच्छे आदमी। कभी-कभी भोंक में आ जाते हैं।”

राधा तनख्वाह पाने से प्रसन्न हो गई थी। कहने लगी—“मैं ही हूँ जो इसे निभाती जा रही हूँ।”

नरेन्द्र ने कहा—“तो अब गुस्सा थूक दो चाची, कुछ खिलाओ-पिलाओ भला, मैं भी घर जाकर कहूँगा कि मेरी दिल्ली वाली चाची ने मेरी वो वो खातिर की। वो वो खातिर की-कि....”

राधा ने अजब ढङ्ग से आँखें नचाते हुए खुशी प्रकट करके कहा—“सो क्या मैं कोई ऐसे-वैसे घर की बेटी हूँ ? ठाकुर की लड़की हूँ। तुम भले घर के लड़के मालूम होते हो। बैठो। बैठो।” फिर उसने मटरु को लक्ष्य करके कहा—“अरे ओ बुद्धू, कुछ घर आये गये की भी लाज है कि नहीं। न किसी की खातिर न पूछ। बैठ गये बीड़ी पीने। अपनी नहीं तो मेरी इज्जत का तो ख्याल रख।”

फिर हँस कर नरेन्द्र से कहा—“बैठो भैया, बैठो।”

दोनों दोस्त बैठ कर गपशप करने लगे। और राधा ने उठ कर खाने-पीने की खटपट शुरू की।





रात को नरेन्द्र केसर के मकान पर गया। वहाँ कुछ तमाशबीन बैठे थे। गाना हो रहा था। नरेन्द्र उनपर एक उड़ती नज़र डाल कर एक ओर चौंदनी पर पड़ रहा। केसर ने जल्दी से गाना बन्द कर सब को बिदा कर दिया और उसके पास आकर बातचीत करने लगी।

केसर ने कहा—“दिन भर कहाँ रहे?”

“इधर-उधर भटकता रहा।”

“भटक कर क्या पाया?”

“अभी तो कुछ भी नहीं।”

“शायद आशा है।”

“शायद।”

कुछ देर केसर चुप रही, फिर उसने पूछा—

“काम मिला?”

“मिल जायगा।”

“अच्छा, खाना मगाऊँ ?”

“नहीं, सोऊँगा ।”

“खाना ?”

“खा आया हूँ ।”

“कहाँ ?”

“चाचा के घर ।”

“कहाँ मिले ?”

“मिल में काम ढूँढ़ने गया था, वहीं मिल गये ।”

“तब आराम करो ।” केसर ने एक स्नेह की दृष्टि उसपर डाली और चली गई । नरेन्द्र वहीं पैर पसारकर सो गया । दिन भर का थका और परेशान रहने के कारण शीघ्र ही उसे नींद भी आ गई ।

खूब नींद भर सो लेने पर जब नरेन्द्र की आँख खुली तो अच्छी तरह दिन चढ़ आया था । वह बिस्तर पर बड़ी देर तक बैठा रहा । केसर घर के भीतरी कमरे में बैठी कोई भक्ति का पद गा रही थी । उसका कण्ठ स्वर सिक्त और भावपूर्ण था । प्रभात के उस मनोरम वातावरण में उसे वह गाना बहुत अच्छा लग रहा था । वह उठकर उसके भीतरी कमरे में चला गया । उसने देखा—वह देव मन्दिर की भाँति सुसज्जित है । दीवारों पर देवताओं के चित्र । बीच में देवमूर्ति फूल-धूप दीप से सज्जित । सद्यः स्नाता केसर देवार्चन करके भाव-मग्न हो गा रही थी । असंयत होकर नरेन्द्र ने पास रखी वीणा लेकर बजाना प्रारम्भ कर दिया । केसर ने चौककर, पीछे मुँह फेरकर देखा और कुछ मुस्कराती हुई सूर का एक पद गाने लगी । नरेन्द्र भाव विमोहित हो वीणा बजाता रहा । दोनों ही कलाकार अपनी-अपनी कला में भाव-विमोहित हो रहे थे । शीघ्र ही वाद्य और गायन एकीभूत हो गये । केसर को अपनी अन्तरात्मा में एक ऐसी दृष्टि और पूर्ति की अनुभूति

हो रही थी कि जिसका अनुभव उसने बहुत दिन से नहीं किया था । गाना समाप्त करके केसर ने कहा—

“वाह, खूब बजा लेते हो ?”

“यों ही कुछ, आज सात साल बाद छू रहा हूँ ।”

हँसकर कहा—“सात साल बाद ? सात साल तक शायद सोते रहे ?”

नरेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा—“सोता ही रहा ।”

“क्या माँ की गोद में ?”

“नहीं, अंगारों पर ।”

केसर ने कुछ चौंककर कहा—“और आज ?”

“आज जागकर तुम्हारा कण्ठ स्वर सुना । सात साल पुरानी एक याद ताज़ी हो गई । न रह सका । भीतर चला आया तो तुम्हारा यह रूप देखा ।”

“कैसा ?”

“रात से बिल्कुल ही निराला । मैंने इसकी कल्पना भी नहीं की थी ।”

“क्यों ?”

“क्यों का जवाब नहीं है ।” वह छत की कड़ियों गिनता रहा फिर कुछ देर बाद जैसे आप ही आप गुनगुनाता हुआ बोला—“बाहर वह और भीतर यह ?”

केसर ने हँसकर कहा—“तुम यह कहना चाहते हो—मेरा बाहर भीतर एकसा नहीं है ?”

“कुछ-कुछ, पर इसमें भी निरालापन है । दुनियाँ जिसे भीतर छिपाकर रखती है, वह तुम्हारे बाहर है । और जिसे वह बाहर दिखाने का ढोंग करती है, वह तुम्हारे भीतर है ।”

केसर ने फीकी हँसी हँसकर कहा—“बस इतना ही ?”

“अभी तो इतना ही देख पाया हूँ। देखकर एक याद ताज़ी हो गई और उँगलियाँ तारों पर फितूर मचाने लगीं।”

“तुम कहते हो सात साल अंगारों पर सोते रहने के बाद ?”

नरेन्द्र ने सिर हिलाकर धीरे से कहा—“हाँ ! केसर देवी, बात तो कुछ ऐसी ही है।”

केसर ने एक सॉस खींचकर कहा—“तो मेरी भी कुछ ऐसी ही कहानी है।”

नरेन्द्र ने जल्दी से चौंककर उसकी ओर देखकर कहा—“नहीं, नहीं, ऐसी नहीं हो सकती।”

केसर ने भावमग्न सी होकर कहा—“ऐसी ही। अन्तर इतना ही है कि सात साल तुमने अंगारों पर सोकर काटे और मैंने जागकर। तुम मर्द थे, अंगारों पर भी चैन से सो गये। मैं औरत हूँ, बर्दाश्त न कर सकी, तड़पती रही।”

नरेन्द्र ने उत्तेजित होकर कहा—“क्या कह रही हो केसर बहिन ?”

केसर ने आँसू पीकर कहा—“नारी की एक कहानी, आँचल में दूध, आँख में पानी।”

“मुझे पूरी कहानी सुना सकोगी ?”

“कभी सुन लेना। पर पहले तुम कहो। तुमने कहा न, एक याद ताज़ा हो गई। कैसी याद थी ?”

“बहुत मीठी।”

“किसकी ?”

नरेन्द्र ने स्नेहार्द्र होकर धीमे स्वर में कहा—“माँ की। वे ठीक इसी तरह भीतरी कमरे में ठाकुर कीर्तन करती थीं। ऐसा ही उनका कमरा था। उनके कीर्तन से मेरी नींद जब टूटती थी तब मैं चुपचाप इसी तरह जाकर वीणा बजाया करता था। आज तुम्हारा कण्ठ स्वर सुनकर जो आँख खुली तो ऐसा ही प्रतीत हुआ जैसे माँ गा रही हैं। न रहा

गया, खिन्ना चला आया। और तार पर उँगलियाँ आप ही चलने लगीं।”

“बड़े भाग्यशाली हो भाई, मैं भी कह दूँ। आज मुझे भी एक याद ताज़ी हो गई। एक आदमी था, उसे मैंने, भगवान ने मुझे जो कुछ दिया, वह सब चुपचाप दे दिया था। देकर सोचा था, निहाल हो गई। इसी तरह मैं सुबह उठकर ठाकुर पूजा करती और वह चुपचाप आकर वीणा बजाया करता।”

उसका कण्ठ काँपने लगा, और नेत्र आर्द्र हो गये।

नरेन्द्र ने कहा—“फिर?”

“फिर वह एकाएक कहीं सो गया। बहुत ढूँढ़ा, बहुत रोई। मगर वह गया सो गया। वह दिन है और आज का दिन तबसे अबतक अंगारों पर तड़पती रही हूँ।” फिर कुछ रुक कर उसने कहा—“आज तुम्हें जो देखा तो समझा वही...खैर जाने दो।”

उसने अपने आँसू पोछे।

“और उस ज़ालिम को तुम भूली नहीं?”

“यह औरत की जात ही ऐसी बदनसीब है कि भूलना सीखा ही नहीं है।”

कुछ रुककर उसने चोली के भीतर से एक फोटो निकालकर कहा—“यह देखो।”

नरेन्द्र फोटो को देखकर एकदम घबड़ा गया। उसके चेहरे का रङ्ग फक हो गया। उसने फोटो को काँपते हाँथों से वापिस कर दिया।

(फोटो वहीं रखकर) “क्या बात है, क्या तबियत खराब हो गई?”

नरेन्द्र ने फीकी मुस्कान होठों पर लाकर कहा—“नहीं मैं ठीक हूँ। ती, अब मैं जाता हूँ।”

“बादा करो, इस वक्त रोज़ वीणा बजाओगे, मेरे साथ।”

“नहीं हो सकेगा बहिन।”

“क्यों ?”

“आज मैं जा रहा हूँ, अपने नये डेरे पर ।”

“कहाँ ?”

“चाचा के यहाँ ।”

“वहाँ क्यों ? यहीं रहो, काम वहाँ करो ।”

“नहीं, वहीं रहूँगा ।”

केसर ने उदास होकर कहा—“अच्छा, तुम्हारी मर्जी । मैंने समझा था, एक सहारा पाया, पर तुम तो चल ही दिये भाई ।”

“जाना ही ठीक है । पर तुम्हें भूलूँग नहीं बहन, आता रहूँगा ।”
उसने हाथ जोड़ कर नमस्ते कहा ।

केसर ने खड़ी होकर कहा—“नमस्ते ।”

नरेन्द्र धीरे-धीरे नीचे चला गया । केसर देर तक उसे जाते हुए देखती रही ।



६

वहाँ की धरती और वायु काँप रही थी, बड़ी-बड़ी मशीनें चल रही थीं। सब मजदूर स्त्री-पुरुष तत्परता से अपने-अपने काम में संलग्न थे। एक डबल मशीन पर नरेन्द्र भी काम पर जुटा था। वह बड़ी फुर्ती और मुस्तैदी से दोनों मशीनों को सँभाल रहा था। मटरू चाचा सब मजदूरों की देख-भाल करते, किसी से चुहल और किसी को डाट-डपट करते घूम रहे थे। सामने की मशीन पर एक स्त्री थी। नरेन्द्र काम करता जाता था और मटरू चचा से बातें भी।

मटरू ने कहा—“नरेन्द्र, इस तरह तो न चलेगा। हड़ताल करनी पड़ेगी। इन मालिकों का कान पकड़कर मजदूरों की सब माँग पूरी करानी पड़ेगी। और मजदूरी तो दूनी होनी ही चाहिये।”

“थोड़ा सब्र करो चाचा, मैनेजर का जवाब आ जाने दो।”

“सब्र ? तुम सब्र को कहते हो। तुम्हें सिर्फ कुछ महीने हुए

हैं, मगर मुझे डेढ़ साल। ये साले पैसे वाले हमारी कुछ सुनते सुनाते नहीं।”

“फिर भी।”

“नहीं भाई, अब तक मैं अकेला था, अब एक और एक, ग्यारह....”

इसी समय अकस्मात्—एक चीत्कार हुआ। और एक कुली की जखीर गिर गई। तथा बराबर काम करते हुए एक मजदूर का हाथ साफ उड़ गया। वह बेहोश होकर भूमि पर गिर गया। मशीनें तुरन्त रुक गईं। नरेन्द्र ने दौड़ कर बेहोश और लोहू-लुहान मजदूर को गोद में उठा लिया। और अस्पताल की ओर ले चला। मटरू चचा और अन्य मजदूर साथ-साथ चलने लगे। उस मजदूर की औरत पीछे-पीछे रोती पीटती चली।

अस्पताल में भी नरेन्द्र ने उस आहत मजदूर की बड़ी तत्परता से सुश्रूपा और सेवा की। तथा उसे जीवन-दान मिलने में सहायता दी।

इस घटना के बाद नरेन्द्र मिल मजदूरों में खूब लोकप्रिय हो गया। लोग उसे दादा भाई कहने लगे। छुट्टी का दिन था। आज सब मजदूर घर पर थे। नरेन्द्र मटरू के साथ सबका हाल-चाल लेता फिर रहा था। एक घर में जाकर नरेन्द्र ने पुकार कर कहा—“पंचू भाई, कहो, आज कैसी तबियत है?”

पंचू बाहर आया। वह एक दुबला, पतला, बूढ़ा सूखचिड़ी आदमी था, नारियल हाथ में लिये नंगे बदन, नङ्गा सिर, कमर में धोती लपेटे द्वार पर आ खड़ा हुआ।”

उसने रोनी सूरत बनाकर कहा—“दादा भाई, लड़की को खूनी आँव आ रहे हैं। बचेगी कि नहीं, भगवान जाने भैया। घरवाली को कल से बुखार चढ़ा है। देखो, ये दोनों पड़े हैं।” उसने दोनों

पड़े मरीजों को दिखा कर फिर कहा—“हाथ में फूटी कौड़ी नहीं। कहीं से दवा लाकर दूँ। कहीं से सागू, वाल्मी. ..” उसने अपनी मैली और फटी हुई धोती से आँसू पोछ डाले।

नरेन्द्र ने कुछ देर चुप रह कर धीरे से कहा—“तनखाह खाने-पीने में खत्म कर दी?”

“पीने खाने में नहीं दादा। महीने भर से काम पर नहीं जा रहा था। बुखार में पड़ा था, अब उससे जान बची तो ये दो पड़े हैं।”

“हूँ।”

“मैनेजर कहता है, काम नहीं करता तो कोठरी खाली कर। कहो भैया, अब इस हालत में कहीं जाऊँ? पन्द्रह बरस से काम कर रहा हूँ। किसी तरह मैनेजर के हाथ पैर जोड़ कर ऐसा हुक्म करा दो भैया, जिससे राह में न पड़ना पड़े।” वह फिर अपने आँसू पोछने लगा।

नरेन्द्र आगे बढ़कर रोगियों के निकट गया। दोनों रोगी धरती पर गूदड़ों में लिपटे पड़े थे। भूख और निराशा आँखों में व्याप रही थी। नरेन्द्र ने नाड़ी देखी, फिर उसने ढारस देते हुए पंचू से कहा—“ढरो मत पंचू। दोनों अच्छे हो जायेंगे।” इसके बाद कुछ मुस्करा कर कुछ पैसे जेब से निकाल कर कहा—“अभी दवा और पथ्य का बन्दोबस्त कर लो पंचू। मैनेजर से कल बातें करूँगा।”

पंचू ने आँखें पोंछीं और भराये स्वर से कहा—“तुम्हारी उम्र बढ़े भैया।” नरेन्द्र और मटरू आगे बढ़ गये।

पर मटरू को यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने कहा—“नाहक पैसे दिये तुमने। देखना, साला सब पैसों की शराब पी आयेगा, बीमार भले ही मर जायँ।”

नरेन्द्र चुपचाप आगे बढ़ता गया। उसने मटरू की बात का कोई प्रतिकार नहीं किया। एक घर से खूब जोर से हँसने और शोरगुल की आवाज आ रही थी। दोनों वहीं पहुँचे। दस-बारह स्त्री-पुरुष जुटे थे। एक टूटा-सा हारमोनियम और तबला उनके बीच में रखा था। शराब की दो-चार बोतलें खाली चारों ओर छुड़की पड़ी थीं। एक अंधेड़ औरत मतवाली होकर अश्लील बकवाद कर रही थी, तथा एक निर्लज्ज छोकरी हाथ में गिलास ले मुँह बना-बनाकर शराब पी रही थी। एक अंधेड़ मजदूर मुँह में बीड़ी दबाये टैं-टैं करके हारमोनियम बजा रहा था तथा मुँह से फकाफक धुँआ फेंक रहा था।

नरेन्द्र ने कहा—“यह क्या हो रहा है दोस्तों।”

सब लोग मटरू चचा और नरेन्द्र को देखकर खिल उठे। कइयों के मुँह से एक साथ ही निकला—“आओ दादा भाई, हम जरा छुट्टी मना रहे हैं। आज इतवार है कि नहीं?”

नरेन्द्र ने शान्त स्वर में कहा—“देखता हूँ, खूब ढाली गई है।” उसने एक तीखी नजर खाली बोतलों पर डाली।

परन्तु मटरू ने आग-बबूला होकर कहा—“लेकिन तुम्हें कुछ आगे पीछे का भी ख्याल है। मर्दूदों, अरे देखते हो कि ये मालिक लोग तुम्हारी कमाई पर ही गुलछरें उड़ा रहे हैं, गुलछरें! समझे कि नहीं। और तुम नज्जा फाग खेलने में मस्त हो।”

एक मजदूर ने बोतल मुँह से लगाकर पीते हुए मटरू को धूरकर कहा—“सब समझते हैं चचा, सब!”

मटरू ने मुरब्बीपन से कहा—“अरे बुद्धुओं, यदि तुम सब लोग काम करने से इन्कार कर दो तो क्या कारखाना चल सकता है?”

सब एक स्वर से बोल उठे—“नहीं चल सकता। नहीं चल सकता।”

मटरू ने उत्साहित होकर कहा—“भाइयों, एक-एक तिनका जोड़-जोड़कर रस्सी बनती है कि नहीं ?”

एक ने कहा—“जरूर बनती है ।”

“उस रस्सी से हाथी बाँधा जाता है कि नहीं ?”

एक मजदूर ने नशे में भ्रूमकर कहा—“वाह चचा, खूब बात निकाली । हाथी को ला बाँधा, हाँ चचा, हाथी बाँधा जाता है । अच्छा हो जाय इसी बात पर मौके की ।” वह हारमोनियम पर अट-शट उँगली चलाने लगा । और सब लोग शोर करने और परस्पर धौल-धप्प तथा गाली-गलौज करने लगे ।

मटरू ने डपटकर कहा—“सुनो यारो, इस मैनेजर और इन मालिकों को तो देखो—क्या शान से मौज करते हैं ! मोटरों में घूमते हैं । महलों में रहते हैं और हम ? मजदूर ? जो छाती फाड़कर मेहनत करते हैं ।” इधर देखो—उसने एक फटेहाल मजदूर की ओर उँगली दिखाकर कहा—“यह देखो, फिर दूसरे की ओर संकेत करके—” यह देखो, तीसरे की ओर संकेत करके—“हम सब इस तरह फटे हाल रहते हैं ।”

एक मजदूर—शराब के नशे में बुत, बोलत छाती से लगाकर रोने लगा ।

रोते-रोते उसने कहा—ओ हो-हो-हो । मत सहो, मत सहो । यारों ।

सब लोगों में सन्नाटा छा गया । सब मटरू की ओर ताकने लगे ।

नरेन्द्र ने गर्ज कर कहा—“यह लाखों करोड़ों रुपयों का मुनाफ़ा किनकी बंदौलत ?”

सबने चिल्लाकर कहा—“हमारी ।”

“इस सब दौलत, ऐश, मोटर और कोठियों के मालिक कौन ?”

“हम-हम ।”

मटरू ने हाथ मटका कर कहा—“उस दिन मोहन छुट्टी मँगने गया था—मैनेजर ने उसके पेट में लात मारी। वह लुढ़कता पुढ़कता सीढ़ियों पर आ गिरा। वह आज कहाँ है?”

सबने कहा—“अस्पताल में सड़ रहा है।”

“उसके बीबी बच्चों का क्या हाल है?”

“बेचारे भूखों मर रहे हैं।”

नरेन्द्र ने समझाते हुए कहा—“आज उसे है, कल तुम्हें। भाइयों....”

सबने फिर चिल्लाकर कहा—“दादा भाई, हमें उबार लो, हम बड़े पापी हैं।”

वह शराबी मजदूर बोतल छाती से लगा कर रोता हुआ बोला—“उबार लो दादा, उबार लो। ओ हो-हो-हो।”

नरेन्द्र ने कहा—“भाइयो, क्या यह जुल्म तुम सदा सहते रहोगे?”

“नहीं सहेंगे—नहीं सहेंगे।”

“यदि सब, एक स्वर से बोलो—सब एक सूत कर लो, तो तुम जो चाहो वही हो सकता है।”

अब मटरू ने चीख कर कहा—“दूनी तनखाह।”

सब चीख पड़े—“दूनी तनखाह, दूनी तनखाह, दूनी तनखाह।”

मटरू ने उसी तरह चीख कर कहा—“सब को छुट्टी—सब को रियायत।”

बहुत से कण्ठ बोल उठे—“चचा मटरू, हम एक सूत में हैं।”

एक शराबी लड़खड़ाता हुआ उठा, उसने बोतल ऊँची करके हकलाते हुए कहा—“मटरू चचा, लो देखना मज़ा। कल ही एक ढिबरी ढीली कर दूँ तो सब धड़-धड़ धड़ाम। आधा कारखाना सत्यानाश। स....त्या....ना....श।”

नरेन्द्र ने उसे पीछे ढकेलते हुए डपट कर कहा—“खबरदार, ऐसी बात सोचना भी नहीं, मरेंगे कौन ? तुम्हीं न ?” कई स्वरों से बोली निकली—“ठीक है दादा, जैसा तुम कहो ।”

नरेन्द्र ने दृढ़ स्वर से कहा—“यदि सब कमर कस कर तैयार हो जाओ, भाइयों, तो तुम्हारा जो रुपया पावना है, सब कौड़ी-कौड़ी वसूल हो जायगा ।”

सबने प्रसन्न होकर कहा—“वाह क्या बात है ।”

इसके बाद सब शोर मचाते हुये उठ खड़े हुये । एक शराबी बेसुरे कण्ठ से ग्रंटशंट गाना गाने लगा । नरेन्द्र और मटरू वहाँ से निकल कर एक ओर को चल दिये ।



१०

मिल में मुकम्मिल हड़ताल थी। हज़ारों मजदूर कारीगर दल बाँध कर शोर मचा रहे थे। सब लोग जोश में भरे थे। बहुत से मजदूर जुलूस बनाकर मैनेजर के दफ्तर की ओर आ रहे थे। सब के आगे नरेन्द्र और मटरू थे।

मजदूरों के फटे-पुराने कपड़े, चेहरे पर दुःख-भूख-वेदना निराशा और उत्तेजना के भाव, उनकी दुरवस्था को प्रकट कर रहे थे। नरेन्द्र निकर और कमीज पहने हुए, मटरू पजामा-कुरता और वास्कट डाटे, ठाट से लीडरी शान से सबसे आगे थे।

मजदूरों में स्त्री-पुरुष दोनों थे। जुलूस मैनेजर के आफिस के आगे रुक कर नारे लगाने लगा।

दोपहर का समय था। दिन साफ था। धूप में काफी तेजी थी। उसमें धटों खड़े रहने से मजदूर स्त्री-पुरुषों के मुँह लाल हो रहे थे। मैनेजर ने बाहर आकर कहा—“तुम लोग क्या चाहते हो ?”

मटरू ने शान दिखाते हुए कहा—“हम अपनी माँग दे चुके हैं। वे पूरी होनी चाहिये, जब तक वे पूरी नहीं होंगी, हम काम नहीं करेंगे।”

मैनेजर ने शान से कहा—“तुम्हारा जो अगुआ हो वह एक आदमी भीतर आकर बातें करे।”

मैनेजर भीतर चला गया। सब साथी मजदूरों से सलाह करके मटरू और नरेन्द्र भीतर गये। और मैनेजर के सामने खड़े हो गये।

वह एक शानदार सजा हुआ कमरा था। जिसमें खूब बड़ी सजी धजी मेज पर बहुत-सी फाइलें, रजिस्टर आदि रखे थे। मैनेजर क्लीनशेव, सूटेड बूटेड अप्टुडेड युवक था। वह—नाक पर चश्मा चढ़ाये कुर्सी पर डटा बैठा था।

उसे देखते ही कहा कहा जा सकता था कि वह एक तेज मिजाज, धमण्डी और गुस्सैल आदमी है। उसने कुर्सी की पीठ पर अकड़ कर दोनों की ओर घूरते हुए कहा—“कहो क्या कहना है?”

नरेन्द्र ने आगे बढ़कर कहा—“हमें जो कहना था, वह हम लिख कर पहले ही दे चुके हैं।”

मैनेजर ने नरेन्द्र को घूरते हुए कहा—“हूँ, तो तुम इम ग्रूप के रिंग लीडर हो। तुम्हारा नाम क्या है?”

नरेन्द्र ने कहा—“तुम नहीं, आप कहिये।”

मैनेजर ने दाँतों में निचला होंठ दबाते हुए व्यंग से कहा—“अच्छा, मैं यह बातें भूल गया था कि आप महज़ मजदूर ही नहीं, मजदूरों के लीडर भी है।”

“आप ऐसा समझ सकते हैं, परन्तु आपको हर एक मजदूर से भी ‘आप’ कहकर बात करनी चाहिये। और यह न भूलना चाहिये कि वह भी आपही की तरह मनुष्य हैं।”

मैनेजर ने व्यंग से झुककर कहा—“आपकी यह बुजुर्गाना नेक नसीहत मैं याद रखूँगा। अब आप अपनी बात कहिये।”

“बात तो कही जा चुकी है।”

“तो, आप लोगों ने जो फर्माइशें की हैं उनको यदि पूरा-पूरा मंजूर कर लिया जाता है तो उसका मतलब यह होगा कि हम लोग पूरी मिल आपको सौंप दें। और आप लोग हो मिल के मालिक हो जाँय।”

नरेन्द्र ने लापरवाही से कहा—“हो सकता है।”

मैनेजर ने बनते हुए कहा—“जी, तो फिर हम क्या करेंगे?”

नरेन्द्र ने गम्भीरता से कहा—“यदि आप जैसा कहते हैं वैसा ही करें, सिर्फ हमारे माँगे हुए अधिकार ही नहीं, पूरी मिल आप हमें सौंप दें, तो हम आपके साथ वैसा निर्दय और अमानुषी व्यवहार नहीं करेंगे जैसा आप हमारे साथ करते आ रहे हैं। हम आपके अवतक के सब कुकर्मों को दर गुजर करेंगे, आप पर रहम करेंगे, और आपको अपना बराबरी का साथी बना लेंगे।”

मैनेजर ने अदब से झुककर ताने से कहा—“ओह, इतना करेंगे आप? मगर मेरे दोस्त, मिल उनके मालिकों की मिलकियतें हैं, मजदूरों की नहीं। जिन मजदूरों को उनकी शर्तें मंजूर न हों वे काम न करें, उनकी छुट्टी। वस बात खत्म।”

“पर हम न खुद काम करेंगे न दूसरों को करने देंगे।”

“दूसरों को काम से रोकने का आपको क्या अधिकार है?”

“अधिकार की बात यह है कि मिल उन पूँजीदारों की नहीं है जिनको आप मालिक कहते हैं, बल्कि उन गरीब मजदूरों की है जिनकी कड़ा मिहनत की कमाई काट-काट कर पूँजी इकट्ठी की गई है, और उसी पूँजी से मिलें तैयार की गई हैं। अब आप उनका खून चूस-चूसकर ऐश इशरत में डूब गये हैं। वे सूखी रोटियाँ माँग रहे हैं और आप उनकी सुनना ही नहीं चाहते?”

मैनेजर ने अब तैश में आकर कहा—“तो आप चाहते क्या हैं ?”

“सिर्फ यही, कि जिनके पेट पहिले ही खाली हैं, उनपर अब और जुल्म न किया जाय ।”

“आप शायद यही समझते हैं कि कड़ी मिहनत आप ही करते हैं । आप ही के बूते पर मिलें चलती हैं । हम लोग गोया कोई मिहनत ही नहीं करते ।”

“इस बिजली के पंखे के नीचे बैठकर आप एक मजदूर का सीना फाड़कर मिहनत करने का अन्दाज़ा नहीं लगा सकते, ज़रा एक दिन किसी मशीन पर खड़े होकर आठ घण्टे ज्यूटी भुगताइये तो ?”

मैनेजर ने अपनी कुर्सी से उठकर और व्यंग से झुककर कहा—
“बहुत खूब, मशीन पर काम करने को बन्दा तैयार है, लेकिन आप इस बिजली के पंखे के नीचे मैनेजर की कुर्सी पर बैठकर मेरा काम संहालिये ।”

“आपका मतलब यह है कि आप मजदूर बनें और मैं मैनेजर ?”

मैनेजर ने व्यंग से मुस्कुराकर कहा—“जी हाँ, यदि आपका उज्र न हो ।”

नरेन्द्र ने कुछ क्षण मैनेजर की ओर ताककर गम्भीरता से कहा—

“मुझे मंजूर है ।”

वह आगे बढ़कर बड़ी शान से मैनेजर की खाली कुर्सी पर बैठ गया, तथा हाथ बढ़ाकर कलम उठा उसने एक आर्डर लिखा । फिर मटरू से कहा—“चचा, उनसे कह दो कि आज से दादा भाई मिल के मैनेजर हो गये हैं । और उन्होंने उनकी सब शर्तें मंजूर कर ली हैं । यह लीजिए आर्डर ।”

मैनेजर ने चौखलाकर मटरू को रोकते हुए कहा—“यह क्या हिमाकृत है ?”

नरेन्द्र ने डपटकर कहा—“खामोश, तमीज़ से बात कीजिए, यह

मैनेजर का आर्डर है ।” फिर उसने मटरू से कहा—“जाओ चचा ।”

शेर की तरह सीना ताने मटरू ने बाहर आकर उच्च स्वर से कहा—
 “भाइयों ! दादा भाई मिल के मैनेजर हो गए हैं । और उन्होंने तुम्हारी सब शर्तें मंजूर कर ली हैं । अब आप सब अपने-अपने काम पर चले जाओ ।” सब मज़दूर हर्ष से चिल्लाने और टोपी उछाल-उछाल कर दादा भाई की जय जयकार करने लगे । इसी समय एक बहुमूल्य मोटर आकर पोर्च में रुकी । और उसमें से सुधा उतर कर आफिस में चली गई । वह मिल की हड़ताल की खबर सुनकर आई थी । परन्तु मैनेजर के आफिस में आकर उसने जो देखा—उससे वह दंग रह गई । उसने देखा—मैनेजर एक ओर विमूढ़ की भाँति खड़ा है और नरेन्द्र मेजपर झुका कुछ लिख रहा है । नरेन्द्र ने सिर उठाकर देखा, दोनों ने दोनों को पहचान लिया । नरेन्द्र अपने हृदय में स्थापित सुधा का एकाएक वहाँ देखकर हर्षित हो गया । सुधा भी सरदार को देखकर आनन्द विभोर हो गई । उसी की कटु बात को न सहकर नरेन्द्र वहाँ से चला आया था । पीछे उसके पिता ने उसके इस व्यवहार पर बहुत दुःख प्रकट किया था । सुधा भी कहीं दूर हृदय के गहन पटपर नरेन्द्र की मूर्ति स्थापित कर चुकी थी । पिता पुत्री दोनों ने नरेन्द्र को बहुत तलाश किया, पर उसका कहीं पता नहीं लगा । इसी बीच सुधा के पिता अकस्मात् हृदय गति बन्द हो जाने से मर गये, सुधा अकेली रह गई । अब यहाँ नरेन्द्र का एकाएक देखकर वह चकित, भीत सी नरेन्द्र को देखती रह गई ।

नरेन्द्र ने खड़े हाँते हुए कहा—“आ-आप यहाँ ?”

सुधा ने आश्चर्य और घबड़ाहट से कहा—“और आप यहाँ कैसे ?”

“मैं इस मिल का मैनेजर हूँ, कहिये, आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ।”

सुधा ने एक बार मैनेजर और एक बार नरेन्द्र को देखकर कहा—“मैनेजर ? कब से ?”

“आज ही से, परन्तु आप कृपया बैठ जाइये”, उसने कुर्सी की ओर संकेत किया ।

सुधा कुछ सोचती हुई बोली—“आपको किसने नियुक्त किया है ?”

नरेन्द्र ने लापरवाही से मैनेजर की ओर इशारा करके कहा—
“इन्होंने ।”

सुधा कुछ भी न समझ सकी । उसने मैनेजर की ओर देखकर कहा—“रमेश बाबू, यह सब क्या गोरखधन्धा है ?”

मैनेजर ने परेशानी और भय नेत्रों में भरकर कहा—“इन्हीं से पूछिये ।”

सुधा ने नरेन्द्र से पूछा—“क्या आप मेरे सम्बन्ध में कुछ जानते हैं ।”

“मैं आपके पिता का आभार कभी नहीं भूल सकता हूँ ।”

“लेकिन यह मिल मेरे पूज्य पिताजी की ही है ।”

“ओह, क्षमा कीजिये । यह मैं नहीं जानता था ।”

“पिताजी दिवंगत हुए ।”

“ओह, यह कैसे ।”

“हृदय गति बन्द होकर । तीन मास हुआ ।”

“मैं बड़ा अभागा हूँ कि उन्हें अन्तिम क्षण में नहीं देख सका ।”

“खैर, तो अब मुझे ही सब देख-भाल करनी पड़ती है ।”

“मैं समझ गया । आपको इस नियुक्ति में कुछ उज्र हो तो यह आपकी कुर्सी है ।” वह उठकर खड़ा हो गया ।

सुधा ने उसे रोकते हुए कहा—“बैठिये, यह बताइये—आपकी यह नियुक्ति कैसे हुई ?”

“मैं कुछ दिन से इस मिल में मजदूरों के साथ काम कर रहा था। मजदूरों की कुछ माँगें थीं। उनकी तकलीफें मैंने देखीं और उनकी माँग मुझे उचित जँची, उन्होंने मुझे प्रतिनिधि बना कर मैनेजर के पास भेजा। बातों ही बातों में मैनेजर साहेब का कुछ ऐसा शुभ विचार हुआ कि वे मजदूर का काम करेंगे, और मैं मैनेजर का। उनका वह अनुरोध मैंने स्वीकार कर लिया, बस इतनी सी ही बात है।”

सुधा के होठों पर बरबस मुस्कुराहट फैल गई। उसने उसे ओठों ही में दबाकर कहा—“आप क्या इस भारी जिम्मेदारी को सम्हाल लेंगे? आप काम कर सकेंगे?”

“काम तो मैंने शुरू कर दिया, सब मजदूर खुश हो गये, और वे अभी कामपर लौट रहे हैं।”

रमेश ने क्रांथ से पैर पटककर कहा—“बहुत मज़ाक हुआ सुधा, मुझे पुलिस बुलानी होगी।”

सुधा ने रमेश की ओर देखकर कहा—“ठहरो, क्या तुमने इन्हें स्वेच्छा से अपनी कुर्सी दी है?”

रमेश ने झुंझलाकर कहा—“महज मजाक।”

नरेन्द्र ने उठते हुए कहा—“मैं जबर्दस्ती नहीं चाहता, यह आपकी कुर्सी है।”

सुधा ने गम्भीरता से कहा—“आप वहीं बैठिये। मैं आपको स्थाई रूप से मिल का मैनेजर नियुक्त करती हूँ।”

वह तुरन्त ही बाहर चली आई। नरेन्द्र भी साथ ही साथ बाहर आया। दोनों को देखकर मजदूर—सुधारानी की जय, दादा भाई की जय के नारे लगाने लगे।

नरेन्द्र ने ऊँची आवाज़ में कहा—“भाइयों, सब कोई शान्ति पूर्वक अपने-अपने काम पर जाओ। और याद रखो आज से तुम

मजदूर या नौकर नहीं हो, मालिक हो। अब तुम जितनी मिहनत करोगे, जितना पसीना गिराओगे सब अपने लिये।”

सब ने नारा बुलन्द किया—“दादा भाई जिन्दाबाद, सुधा रानी जिन्दाबाद।”

वे नारे लगाते और गाते हुए अपने-अपने काम पर लौटने लगे।



११

रात के आठ बज गये थे। परन्तु सुधा अभी तक आराम कुर्सी पर बैठी कोई पत्रिका पढ़ रही थी। वह एक हल्की साड़ी पहने थी। उसके मुख पर प्रसन्नता छाई हुई थी।

एक बूढ़ी दाई पास फर्श पर बैठी कुछ सिलाई कर रही थी। बीच-बीच में एकाध बातचीत भी होती थी। दासी ने टाँका लगाते हुए कहा—“बिटिया रानी, अब उठो, खाना खा लो। महाराज दो बार आ चुका है।”

“अभी तो आठ ही बजे हैं राधा की माँ, ऐसी जल्दी क्या है।”

“बिटिया की बातें। खाना क्या आधी रात को खाया जायगा।”

“अच्छा चलती हूँ। परन्तु....”

सुधा कुछ कहने ही जा रही थी कि रमेश और उसके पिता कैलाश बाबू सामने से आते दीख पड़े। दूर से देखते ही राधा की माँ ने नाक भौं सिकोड़ कर कहा—

“इस बुढ़ऊ को तो मैं एक आँख नहीं देख सकती बिटिया । अब आ गया तो खाना मिट्टी हुआ समझो ।”

सुधा ने कोई उत्तर नहीं दिया । मुस्कुराकर दासी को देखने लगी । दासी उठकर चली गई ।

कैलाश बाबू ठिगने मोटे, पक्के रङ्ग के आदमी थे । सिर उनका गज्जा था । उम्र ६५ साल । आँख पर सुनहरी कमानी का चश्मा चढ़ा था । बदन पर कोट, कमर में धोती, सिर नङ्गा । धीरे-धीरे लकड़ी टेकते-टेकते बरण्डा पार करके सुधा के निकट चले आये । पीछे-पीछे साहबी ठाठ में रमेश बाबू भी थे ।

सुधा ने प्रसन्न बदन खड़े होते हुए कहा—“नमस्ते चाचा जी, आइये ।”

“जीती रहो बेटो, जीती रहो । तीन दिन से तुम्हें नहीं देखा—सो जी घबराने लगा, मैंने कहा—रमेश, चल बिटिया के पास ले चल (कुर्सी पर धम्म से बैठते हुए) लेकिन यह क्या लड़कपन किया बिटिया । जब से सुना, परेशान हूँ, जगदम्मा बाबू नहीं रहे, (आँसू पोछकर) अब तो बिटिया मुझे ही सब सोचना देखना पड़ता है, पर अब क्या होगा बिटिया ?”

सुधा ने हँसकर कहा—“कुछ नहीं होगा चाचा जी, रमेश बाबू की परेशानी दूर हुई, अच्छा ही हुआ । वे मजदूर रात दिन इनकी जान खाये रहते थे, दस दिन हड़ताल के हो गये थे, इनकी भी नाक में दम था । अब सब ठीक हो गया, सब काम पर चले गये ।”

कैलाश बाबू ने कहा—“लेकिन एक खूनी डाकू को मिल मैंनेजर बना दिया । जानती तो हो इसी ने सेफ तोड़ कर दस हजार रुपये चुराये थे ।”

सुधा ने जाने किस सुख में मग्न थी । उसने हँस कर कहा—

“लेकिन चाचा जी, यह काम तो किया है रमेश बाबू ने, मैंने तो सिर्फ उनके किये को बहाल किया है।”

“वही तो रोता हूँ, जैसी तुम वैसा यह। पढ़ गये तो क्या, तजुरबा तो नहीं है। जगदम्बा बाबू कहा करते थे। अहा-हा स्वर्ग में वे सब भक्तों से छूटकर आनन्द कर रहे हैं, और मैं पापी, हरे कृष्ण हरे....”

सुधा ने हँस कर कहा—“हाँ चाचा जी, पिता जी क्या कहा करते थे?”

“हाँ बिटिया, कहा करते थे कैलाश, तेरा दिमाग हीरा है। कभी एक बात नहीं हुलसी, स्याह सफेद जो कर दिया सो ठीक।”

“तो चाचा जी, अब स्याह सफेद जो कर दिया सो ठीक।”

“नहीं-नहीं बिटिया, मैं नहीं मानूँगा, एक डाकू को मैं इतनी बड़ी जगह पर बैठकर मनमानी न करने दूँगा? कल ही उसका कान पकड़ कर पुलिस.... (सुधा को देखते हुए) हाँ, कहे देता हूँ।” उन्होंने छड़ी टाँककर क्रोध प्रकट किया।

“फिर मिल का काम कैसे चलेगा चाचा जी, रमेश बाबू के बूते का तो दीखता नहीं है। आप देखते ही हैं, सब मजदूर मिल्मी इनसे नाराज हैं, मिल का सारा काम ही ठप हो गया है।”

रमेश ने गुस्से से हाथ पटक कर कहा—“इसमें दोष तुम्हारा ही है सुधा, तुम क्यों मेरे काम में टाँग अड़ाती हो?”

“मैं तो तुम्हें मदद देती हूँ रमेश बाबू, तुमने मजदूर डाकू को मिल मैनेजर बना दिया, मैंने उसे बहाल कर दिया।

“भाड़ में जाय वह माला डाकू, कल ही मैं उसे पुलिस में दूँगा।”

“लेकिन मजदूरों का सुख-दुख देखना भी तो हमारा काम है। वे जी तोड़कर मिहनत करते हैं।”

रमेश ने मुँह बनाकर कहा—“सब जानवर हैं साले, जरा ढील दी कि बस सिर पर।”

“पर पराये दुख में दुखी होना भी तो मनुष्य का धर्म है ?”

“अपना धर्म मैं जानता हूँ सुधा ! मैं किसी की सीख पर नहीं चलता । नहीं, तुम उस डाकू को मिल का ही नहीं सारी स्टेट का और समूचे कारबार का मैनेजर बना दो ।”

सुधा उपेक्षा से उठ खड़ी हुई । उसने कैलाश बाबू की ओर मुँह करके कहा—“मुझे एक थोड़ा-सा काम है चाचा जी, आप क्या अभी बैठेंगे ?”

कैलाश को उसकी रमेश के प्रति यह उपेक्षा अच्छी नहीं लगी, उन्होंने उठते हुए कहा—“नहीं बिटिया, मैं चला, पूजा का समय हो रहा है । पर देखो तुम दोनों के बीच में किसी का बोलना तो ठीक नहीं, पर दोनों एक मत होकर काम करोगे तो अब नहीं तो आगे तुम्हारे ही काम आयेगा । तुम लोगों को सुखी देखकर स्वर्ग में जग-दम्बा बाबू, अहा-हा, क्या कहूँ ।”

कैलाश बाबू आँखों से आँसू पोंछते और छड़ी टेकते हुए चले गये । रमेश बाबू उसी तरह खड़े रहे । सुधा ने जाते-जाते उलट कर रुखाई से पूछा—“आपका मुझसे कुछ काम है रमेश बाबू ?”

“नहीं ।”

“आपके लिये चाय दे जाने को कह दूँ ?”

“नहीं ।”

“तो नमस्ते !” दोनों हाथ ऊँचे कर नमस्ते करती वह चली गई । रमेश गुस्से से होठ चबाता हुआ तीर की तरह बाहर निकल गया । कैलाश बाबू सीधे अपने घर में आकर अपनी बैठक में चले गये । परन्तु रमेश अपनी खीझ और क्रोध से दब-पेच खाता बड़ी देर तक इधर-उधर भटकता रहा । बहुत देर बाद जब वह घर में आया तो नौकर से पूछा—“क्या बड़े बाबू जग रहे हैं ।”

“अभी जग रहे हैं, सरकार ।”

और कुछ न कहकर रमेश भीतर चला गया, फिर कपड़े बदल कर पिता के पास पहुँचा।

कैलाश बाबू का अपना छोटा-सा दुमझिला घर था। उसमें एक छोटी-सी बैठक थी जिसमें बहुत पुराना थोड़ा-सा फर्नीचर था। एक ओर पलङ्ग पड़ा था। उसी पलङ्ग पर कैलाश बाबू बैठे हाथ में हुक़े की सटक लिये धुआँ छोड़ रहे थे। मस्तिष्क में अनेक विचार आ जा रहे थे। इसी बीच रमेश ने आकर खीझ भरे स्वर में कहा—“आपकी यह चापलूसी तो अब सही नहीं जाती बाबू जी। आप दो टूक बात क्यों नहीं करते? कितना मेरा इन्सल्ट हुआ है कहिये तो, अब या तो उस साले डाकू को निकलना होगा या फिर मैं ही निकल जाऊँगा।”

“कहता हूँ तू गधा है, विलकुल गधा, यह लड़की साधारण नहीं है। वह पढ़ो-लिखी है, वह जानती है कि वह मालकिन है। बात-बात पर खींचातानी से तार टूट जाता है। यह बात तुझे इतना समझता हूँ पर तेरी समझ में नहीं आती। शादी होने तक की ही बात है फिर तो सब तेरा ही है, इतना भी नहीं समझता तू?”

“सब समझता हूँ, पर मैं दब कर नहीं रह सकता।”

“अरे भाई, मतलब के लिये गधे को भी बाप बनाना पड़ता है। जरा इस बुढ़े की करामात देख—सब मालमता, जमींदारी-जायदाद, मिल, तेरी ही हो जायगी। साथ ही वह जङ्गली बिल्ली भी। अभी तो दाना-पानी डाल कर परचाता चल।”

“मगर वह साला डाकू?”

“कहता तो हूँ कल देखूँगा उसे, मेरे ऊपर छोड़ दे। जा अब सो।”

रमेश धीरे धीरे बाहर चला गया। कैलाश बाबू हँसते हुए सोने का उपक्रम करने लगे। उन्हें अपना कारस्तानी पर बहुत भरोसा था।

१२

तीसरा पहर था । सूरज की किरणें जमुना के हिलोरे लेते हुए जल में चल-चञ्चल हो रहीं थीं । बसन्त का पूरा उभार पाकर वृक्ष फूलों से लद रहे थे । दूर पर कोलाहल और सङ्घर्ष से भरा हुआ नगर नजर आ रहा था । परन्तु यहाँ का वातावरण बहुत शान्त था ?

नरेन्द्र अकेला, एक वृक्ष के सहारे बैठा था । हाथ में एक फूल भरी टहनो थी, पैर फैले हुए, दृष्टि अस्तङ्गत सूर्य पर । कुरता पजामा जवाहर वास्कट शरीर पर ।

वह तन्मय होकर एक गजल भिभोटी के सुर में गुनगुना रहा था ।

इतनी तेरी दौलत है, कुछ हमको दिलाता जा ।

तू अपनी सखावत का, कुछ रङ्ग जमाता जा ॥

तू एक तवंगर है, मैं दर का भिल्लारी हूँ ।

दो दिन की जिन्दगी है, लेदे के निभाता जा ॥

उम्मीद की फूलों से, भर पूर इस ओली में ।
 हँसते हुए आँसू की, एक बूँद गिराता जा ॥
 तेरी तो एक हस्ती है, मैं कुछ नहीं हूँ लेकिन ।
 यह तेरा ही साया है, अब साथ निभाता जा ॥
 कुछ वह असर दिखा दे, जादू के करिश्मे से ।
 आँखों में रुलाता जा, होठों में हँसता जा ॥

इसी समय सुधा बूढ़ा दासी रधिया की माँ को सङ्ग लेकर यमुना तट पर घूमने आई । नरेन्द्र का कण्ठ स्वर सुन कर ठिठक गई । बूढ़ी दासी ने कहा—

“यह तो वही नया मनीजर है रानी बिटिया ।”

“वही है ।”

“पर वे तो कहते हैं यह मुआ डाकू खूनी है ।”

“कौन कहते है ?”

“सब कहते हैं । इसी ने न बड़े बाबू की तिजोरी तोड़ कर ढेर-सा रुपया चुराया था ? वह तो बड़े बाबू ने छोड़ दिया ।”

“कहीं यह डाकू तुझे न लूट ले रधिया की माँ ।”

“मेरा मुआ क्या लूटेगा ?”

सुधा ने हँस कर कहा—“आ चल, उससे बातें करें ।”

“घर चलो बिटिया, ऐसे आदमी से बात करना अच्छा नहीं ।”

पर सुधा ने दासी की वह बात नहीं सुनी । वह आगे बढ़ कर नरेन्द्र के निकट आई ।

नरेन्द्र उसे देखते उठ खड़ा हुआ । उसने कहा—

“नमस्ते ।”

“नमस्ते, आप यह विद्या भी जानते हैं ।”

नरेन्द्र ने हँस कर कहा—“योंही, कभी-कभी अकेलापन दूर करने के लिए गुनगुना लेता हूँ ।”

“आप को यह जगह पसन्द है ?”

“क्यों नहीं, बहुत अच्छी जगह है, फिर मजूर आदमी हूँ, जहाँ पेट भरेगा, वह जगह पसन्द ही करनी पड़ेगी।”

“कोरे मजदूर ?”

“जी नहीं, चोर डाकू और न जाने क्या-क्या” वह हँस दिया। सुधा भी हँस दी। उसने कहा—“ऐसे काम आप किस लिये करते हैं ?”

“पेट के लिये, यही तो ?” उसने चलने को कदम बढ़ाया। सुधा ने चलते-चलते हँस कर कहा—

“आप का पेट शायद बहुत बड़ा है ?”

“आप तो देख ही चुकी हैं, ऐसा न होता तो उसे आपके पिता जी के दान का आसरा क्यों लेना पड़ता। असल बात यह है—भूखे का पेट ही नहीं, उसके रक्त की एक-एक बूँद भूखी होती है, उसी भूख की आग में वह अपने आगे पीछे का सब पुण्य पाप जो उसके सामने आता है—भक्षण कर जाता है, और फिर भी भूखा ही रहता है। परन्तु शायद यह आप अनुभव न कर सकेगी ?”

सुधा ने उदासी से कहा—“शायद। लेकिन इस भूख का कुछ आदि-अन्त ?”

“नहीं है, यह मनुष्य का दुर्भाग्य है।”

“केवल मनुष्य का ?”

“जी हाँ, बड़े से बड़े खूँखार जानवर भी पेट भरने पर तृप्त होकर सोते हैं। पर मनुष्य नहीं।”

“मनुष्य तो रक्त नहीं पीता।”

“जी हाँ, वह रक्त पीता नहीं, रक्त में स्नान करता है। भला पीयेगा कितना ? जितना पेट में समायेगा उतनाही न ? परन्तु स्नान के लिये तो उसे नद-नदी सर समुद्र सब थोड़े पड़ जाते हैं।”

“लेकिन उसकी भूख ?”

“भूख की मत पूछिये । वह अपने को समूचा निगल जाने पर भी भूखा रहा है, युग-युग से जन्म-जन्म से ।”

“तो आप का वह गाना भी भूख ही का गाना था ?”

“भूख न हो तो कहीं मर्द वच्चा भीख माँगता है ?”

“लेकिन जिससे भीख माँगी जाती है, उसकी भूख भी है ।” सुधा का कण्ठ स्वर कोमलतम हो गया—नरेन्द्र ने उसे लक्ष्य किया । एक बार उसने आँख उठा कर सुधा की ओर देखा, फिर कहा—“है क्यों नहीं, अपनी भूख मारकर जो भिखारी को भीख दे वही तो दाता है, लीजिये आपकी मोटर आ गई ।” वह रुक कर खड़ा हो गया—

सुधा ने ठिठक कर कहा—“आप रहते कहाँ है ?”

“एक चचा हैं, उन्हीं के पास ।”

“आप के माता पिता भाई ।”—

“कोई नहीं है ।”

“घर ?”

“कहीं नहीं हैं, आप गाड़ी में बैठ जाइये—नमस्कार ।”

सुधा ने मोटर में बैठकर कहा—“आप भी आइये ।”

“नहीं, नमस्ते ।”

“नमस्ते ।”

मोटर चली गई । परन्तु नरेन्द्र अविचल, एक टक उसी ओर देखता रहा । इस समय जो सुधा ने एक दो शब्द कहे थे, वह उन्हीं पर विचार कर रहा था । एक दबी हुई वेदना उसके हृदय में उभर रही थी ।



१३

इञ्जिन में कोई खराबी आने से सब मशीनें बन्द थीं। नरेन्द्र इञ्जीनियरों के साथ मशीन के पुरजों से उलझ रहा था। इञ्जीनियर और अन्य कर्मचारी विमूढ़ भाव से उसकी तत्परता देख रहे थे।

नरेन्द्र के हाथ मुँह और शरीर में स्याही और गन्दगी लगी थी। परन्तु इसकी ओर उसका ध्यान ही न था, वह जी-जान से इञ्जिन के नुक्स दूर करने में संलग्न था। उसकी कुशलता देख कर चीफ इञ्जीनियर दङ्ग था। वह जो आँखें मोंगता था—आदेश देता था—सब लोग दौड़-दौड़ कर उसकी पूर्ति कर रहे थे। मध्याह्न हो चुका था। धूप में तेजी आ गई थी। नरेन्द्र का शरीर पसीने से तर था।

एकाएक इञ्जिन चालू हो गया, सब लोग खुशी से चिल्ला उठे। मशीनें धड़-धड़ाती चलने लगीं। नरेन्द्र उसी हालत में अपने दफ्तर की तरफ चल दिया।

दफ्तर के द्वार पर मटरू चचा मुस्तैद। निकर, कमीज डाटे, सिर

पर गांधी टोपी लगाये, मुँह में बीड़ी दबाये फकाफक धुआँ उड़ा रहे थे। एक दो सिपाही क्लर्क भी वहाँ थे।

इसी समय कैलाश बाबू और रमेश वहाँ पहुँचे। दोनों ने दफ्तर में प्रविष्ट होने के लिये द्वार के भीतर कदम रक्खा।

मटरू ने बीड़ी फेंक आगे बढ़कर कहा—“ऐं ऐं, कहा?”

रमेश ने डाटकर कहा—“हट जाओ गधे?”

मटरू ने कड़ककर कहा—“खबरदार गाली दी तो नाक काट लूँगा।”

कैलाश ने आगे बढ़कर कहा—“बड़े बदतमीज़ हो?”

“मगर आप से ज्यादा नहीं।”

“जानते हो हम कौन हैं?”

“आप कोई हों, पर गाली आप नहीं दे सकते, भीतर भी नहीं जा सकते।”

“क्यों नहीं जा सकते?”

“मैनेजर साहेब का हुक्म नहीं है।”

रमेश ने गुस्से में आकर कहा—“हुक्म का बच्चा।”

इस पर मटरू ने रमेश को उठाकर पटक दिया।

कैलाश बाबू का चश्मा नाकपर आकर अटक गया। और वे खड़े-खड़े हॉफने लगे।

कैलाश बाबू दूर हटकर ‘खून-खून’ चिल्लाने लगे।

इसी समय धूल-स्याही और पसीने से लतपत नरेन्द्र ने वहाँ पहुँचकर कहा—“यह क्या हंगामा है?...”

नरेन्द्र को देखते ही रमेश ने चिल्लाकर कहा—“यह सब इसी बदमाश की शरारत है।”

नरेन्द्र ने उसके पास जाकर कहा—“किस बदमाश की।”

“तेरी।”

नरेन्द्र ने उसका कालर पकड़ कर एक घूँसा जड़ दिया। रमेश वह वज्र घूँसा खाकर लुढ़क-पुढ़क सीढ़ियों से नीचे जा गिरा। नरेन्द्र ने कैलाश बाबू के निकट जाकर पूछा—“आप कौन हैं?”

कैलाश ने घबड़ाकर कहा—“म-म-मैं कैलाश चन्द्र मैं....”

“क्या आपको मुझसे कोई काम है?”

कैलाश ने हाथ की छड़ी को इधर-उधर घुमाते हुए घबड़ाहट भरे स्वर में कहा—“हाँ, हाँ।”

“तो आइये, भीतर आइये।”

दोनों भीतर गये। नरेन्द्र अपनी कुर्सी पर बैठ गया। और कैलाश को एक कुर्सी की ओर बैठने का इशारा करके कहा—“कहिये, आपकी मैं क्या सेवा कर सकता हूँ?”

“मैं-मैं सुधा का चाचा हूँ—कैलाश चन्द्र।”

“मिलकर खुश हुआ, आज्ञा?”

“तु-तुम यहाँ....”

नरेन्द्र ने उँगली से रोककर कहा—“तुम नहीं, आप कहिये।”

“आपको यहाँ बैठने का क्या हक है?”

“आपको यह पूछने का क्या हक है?”

“मैं यहाँ का मालिक हूँ।....”

“लेकिन मैं तो आपको जानता नहीं। अच्छा हो आप सुधा देवी के पास जाँय।”

“जाता हूँ, जाता हूँ।” कैलाश बाबू अपनी काँपती हुई टाँगों पर पूरा जोर देते हुए भागे। आफिस से बाहर आकर रमेश से कहा—“चलो, चलो, यहाँ से चले चलो, मैं सब देख लूँगा। सब समझ लूँगा।”

पिता पुत्र दोनों ही कुछ देर चुपचाप चलते गये। रमेश ने कहा—“मैं अभी सुधा के पास जाकर मामले का हेस नेस किए बालता हूँ।”

कैलास बहुत भयभीत हो रहे थे, बोले—“तू जो ठीक समझे वही कर, मैं घर जाता हूँ।” धूल गर्द भाड़ कर रमेश ने अपनी ड्रेस ठीक कर ली और वह सुधा के बँगले पर पहुँचा।

सुधा स्नानागार में थी। इसलिये उसे बैठकर उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। बाहर आते ही रधिया को माँ ने कहा—“रमेश बाबू बहुत देर से आये बैठे हैं।”

“क्या उन से चाय के लिये पूछा?”

“जी हों, उन्होंने कहा—जरूरत नहीं है, पी आया हूँ।”

सुधा झटपट कपड़े पहन बैठक में पहुँची। उसने देखा—रमेश बाबू टहल रहे हैं। सुधा को देखते ही उन्होंने उत्तेजित होकर कहा—“उसकी बदजाती देखी?”

“क्या हुआ?”

“तुम्हें मालूम ही नहीं।”

“इतना ही सुना, आप के उनके बीच कुछ झगड़ा हो गया?”

“झगड़ा? तुम झगड़ा कहती हो। उस साले ने मुझे मार नहीं डाला, यही गनीमत समझो।”

सुधा ने हँस कर कहा—“उसे ऐसा करना नहीं चाहिये था, लेकिन आप उसके पास गये क्यों थे?”

“तुम यह कहना चाहती हो कि मैं मिल में क्यों गया था?”

“मेरा मतलब यह कि यहाँ तक नौबत ही कैसे आई।”

“यानी मेरा ही कसूर था?”

“यह मैं कैसे जानूँ?”

“मेरा इतना अपमान तुम यों ही सह लोगी सुधा?”

“मैं जाँच करूँगी। मैं उससे कैफियत तलब करूँगी?”

“लेकिन मैं उसे निकाल बाहर करना चाहता हूँ—एकदम निकाल बाहर करना।”

“किस अपराध पर ?”

“अभी और भी अपराध देखना है ?”

“उसकी अभी जाँच तो हुई नहीं ।”

“अच्छी बात है, तो फिर मैं ही तुमसे बिदा होता हूँ ।”

“आप नाहक नाराज होते हैं ।”

“नाहक, उस कमीने आदमी का तुम ऐसा पक्षपात करती हो ।
और कहती हो नाहक । यह औरत की जात ही ऐसी है ।”

“रमेश बाबू, जवान सभालकर बात करो ।”

“मैं जाता हूँ ।”

वह तेजी से कमरे से निकल गया ।



१४

दिन के प्रकाश के साथ ही साथ कुलियों के क्वार्टर का अशोभनीय रूप अधिकाधिक व्यक्त होता जाता था। टूटे-फूटे, गन्दे, दुर्गन्धित छोटे-छोटे कबूतर के दर्वे के समान क्वार्टर, जिनकी सफाई का कभी किसी को खयाल ही नहीं आता, और बाहर कच्ची तङ्ग सड़कें, जिनमें अनगिनत गंदे पड़े गये हैं, और जिनमें पानी भरकर सड़ गया है। किनारों पर भयङ्कर रूप से सड़ायँध फैलाने वाली गन्दगी से लबालब परिपूर्ण नालियाँ। क्वार्टरों से धुआँ उठ रहा है, पानी के नलों पर भीड़ जमा है और गाली गुस्सा हो रहा है। मैले कुचैले कपड़े पहिने मजदूरों की स्त्रियों द्वार पर बैठी बर्तन साफ कर रही हैं।

इसी समय सुधा की मोटर ने उस मुहल्ले में प्रवेश किया। एक स्थान पर मोटर रोककर उसने पूछा—“मटरू का घर कौन सा है?”

मटरू वहीं द्वार पर बैठा हुक्का पी रहा था। उसने उठ कर और

सलाम करके कहा—“यही है सरकार, मेरा ही नाम मटरू है। मगर सब लोग मुझे मटरू चाचा कहते हैं।”

“अच्छा, तो मटरू चाचा, नरेन्द्र कहों हैं।”

“वह तो स्कूल में हैं सरकार।”

“कैसा स्कूल?”

“दादा भाई ने स्कूल खोला है। हम उन्हें दादा भाई कहते हैं।”

“कैसा स्कूल खोला है दादा भाई ने?”

“वहाँ मजदूरों को मशीनों की मरम्मत, सफाई, अपने कपड़ों की और शरीर की सफाई सिखाई जाती है।”

“कौन सिखाता है यह सब?”

“दादा भाई।”

“अच्छा तो मटरू चाचा, ज़रा मोटर में बैठ जाओ। और मुझे उस स्कूल में ले चलो।”

“चलिये सरकार,” वह नारियल रख कर मोटर में बैठ गया।

सुधा ने पूछा—“तुम्हारे दादा भाई बहुत-सी विद्या जानते हैं?”

“जी हाँ हुज़ूर, कल की ही बात लीजिये, इञ्जीन खराब हो गया, द घण्टे सब मशीनें बन्द रहीं, इञ्जीनियर हाथ मार बैठे। फिर दादा भाई जो जुटे सो खटसे इञ्जन चालू! जी हाँ?” (हँसता है)

“मैंने सुना है तुम्हारे दादा मार-पीट में भी एक ही हैं।”

“यह तो सरकार, जैसे को तैसा। कल वह पुराना मैनेजर आया था। लगा जबर्दस्ती भीतर घुसने और गालियों बकने, बस दादा भाई ने उठा पटका, बड़ा डरपोक है सरकार, वह मैनेजर।”

“अच्छा?”

मटरू ने धीरे से कहा—“चोर भी एक ही था। सबकी तनखाह से कटनी लेता था?”

“कटनी?”

“जी हों, हुजूर, अब आप से क्या छिपायें। जिसने इधर-उधर किया भट बरखास्त।”

“हूँ।”

“लीजिये, वह स्कूल आ गया।”

“कहाँ?”

“वह पेड़ के नीचे।”

मैदान में पाँच-सात पेड़ों का झुरमुट था। साफ जगह थी, वही ५०-६० मजदूर स्त्री पुरुष बैठे थे। नरेन्द्र उनके बीच में खड़े होकर उन्हें कुछ समझा रहा था।

वह कह रहा था—“भाइयों, हमारे देश में सबे मजदूर नहीं हैं। पेट पालने को मजदूरी करना और बात है, मगर मजदूरी का फन सीखना दूसरी बात है। मजदूरी का फन न सीखने से हमारे देश के मजदूर भूखे और गरीब हैं। मजदूरों को ये बातें सीखनी हैं—मिलकर रहना। अपना सङ्घ बनाना। सफाई से रहना। तन्दुरुस्ती के नियमों को पालना। जीवन नियमित बनाना। मशीनों, पुर्जों और सामानों की मरम्मत साखना। यहाँ तुम्हें यहीं बातें सिखाई जावेंगी। अच्छा बोलो कौन-कौन नहीं आया।”

इसी समय मोटर का भोंपू बजा और नरेन्द्र ने आँख उठाकर देखा—सुधा की मोटर आई है। मटरू मांटर से उतर कर दौड़ कर वहाँ पहुँचा और चिल्लाकर बोला—“देखो तो दादा भाई कौन आया है।”

इतने हाँ में सुधा हँसती हुई मांटर से उतर कर आगे बढ़ी। नरेन्द्र ने आगे बढ़कर कह—“नमस्ते।”

“नमस्ते, कहिये मास्टर साहब, आप सुके भाँ अपने स्कूल में भरती कर सकते हैं।”

नरेन्द्र ने हँसकर कहा—“इस वक्त कैसे तकलीफ की?”

“योंहीं, सोचा अपने आदमियों के घरों को एक बार आँखों से देख लूँ ।”

“तब देखिये—चलिये ।” उसने मिल मजदूरों से कहा—“अच्छा आज छुट्टी रही भाइयों, आज सुधा रानी तुम्हारे घरों को देखने आई हैं ।”

आगे-आगे सुधा और नरेन्द्र पीछे-पीछे सब मजदूर कुलियों की बस्ती की ओर चलने लगे ।

मजदूर बस्ती निकट आने पर सुधा मोटर से उतर कर पैदल चल कर प्रत्येक घर को देखने लगी । वह प्रत्येक घर के द्वार पर रुक कर पूछती, तब आगे बढ़ती । एक दस-ग्यारह बरस की लड़की शराब की एक बोतल लेकर एक तरफ से आई और एक घर में घुस गई । सुधा भी उस घर में घुस गई । पीछे-पीछे नरेन्द्र और मटरू भी । और सब लोग बाहर खड़े रहे ।

लड़की ने शराब फर्श पर रखकर कहा—“शेर मार्का नहीं मिली बाबू जी । ये तीन आने बचे हैं ।”

बूढ़ा शराबी नङ्गे बदन चटाई पर पड़ा था । घर दुर्गन्धित और कूड़े-ककर्कट से भरा हुआ था । महीनों से उसकी सफाई नहीं हुई थी, बूढ़ा नशे में बुत पड़ा था । उसने तैश में आकर कहा—“कुतिया, इधर तो आ ?”

लड़की डर कर दादा-दादा कहकर नरेन्द्र की गोद में आ छिपी ।

नरेन्द्र ने पूछा—“चमेली, तेरी माँ कहाँ गई ?”

“उसे अठवाड़ा हो गया ; फकीरा काने के साथ भाग गई । उधर घर लेकर रहती है ।”

बूढ़े ने गर्ज कर कहा—“सो देखूँगा कैसे रहती है । ब्याहता है रखेली नहीं । जान ले लूँगा—जान ।” उसने बोतल का काग खोला ।

यह दृश्य देखकर सुधा का सिर घूम गया । उसने कहा—“चलिये

नरेन्द्र बाबू ।” बाहर आकर उसने कहा—“ओफ् यह तो नरक से भी बढ़ कर है ।”

“लेकिन इसे इन लोगों ने नहीं बनाया है । देखिये यह मनुष्य का मनुष्य पर अत्याचार का जीता-जागता प्रमाण है । कहिये, ये लोग जो दिन रात पाप करते हैं, सो उसका दण्ड क्या ये ही भोगेंगे ? उसमें और किसी का साभा नहीं है ?”

“मैंने कभी कल्पना भी न की थी नरेन्द्र बाबू ।”

“अच्छा हुआ आज देख लिया । अब एक बात आपको समझना होगी । इस नरककुण्ड का जो पाप है—वह क्या हमें आपको सबको अछूता ही छोड़ देगा ? देखिये, उधर उस नल पर कितनी तू तू मैं मैं गाली गुफ्ता हो रही है । छोटे का लिहाज न बड़े का ।”

“नरेन्द्र बाबू , क्या इनके उद्धार की कोई राह ही नहीं है ?”

“है क्यों नहीं । पर उसके लिये हमें अपना मत बदलना पड़ेगा । हम कहते हैं ऐसा ही सदा होता रहा है । इसी से हम अकर्मण्य रह जाते हैं । पर दुनिया पहिले भी थी, आगे भी होगी, अब आगे की दुनिया तो वैसी न रहनी चाहिये । लीजिये, यह मटरू चाचा का घर आ गया । मैं यहीं रहता हूँ ।”

“यहीं रहते हैं आप ?”

“जी हाँ, मटरू चाचा, जरा चाची को बुलाओ ।” मटरू ने वहीं से बाँग दी—“अरे ओ, जरा बाहर तो आ ।”

राधा ने द्वार पर आकर अनेक प्रकार का मुँह बनाते हुए मटरू से कहा—“अरे मुँहभौसे, रानी आई हैं रानी, परछन ले परछन ।”

नरेन्द्र ने हँसकर कहा—“चाची, सुधा रानी की कुछ खातिर नहीं करोगी ।”

राधा ने रोना प्रारम्भ कर दिया । रोती हुई बोली—“फूटे भाग, घर में भूँजी भोंग नहीं, रानी जी, मैं ठाकुर की बेटी हूँ ।”

सुधा हँसती हुई आगे बढ़ी और उसने अपना शाल राधा को उढ़ा दिया ।

राधा ने खुश होकर कहा—“रानी जी, कुछ मुँह जूठा करो ।”

सुधा ने हँसकर कहा—“आज नहीं फिर कभी ।” फिर उसने नरेन्द्र से कहा—“नरेन्द्र बाबू, आप चल रहे हैं ?”

“नहीं, धन्यवाद । लेकिन अगर दिक्कत न हो तो कल जरा आफिस में आइये ।”

“क्या बहुत जरूरी काम है ?”

“बहुत जरूरी ।”

“अच्छा ।”

सुधा ने मोटर को स्टार्ट किया । सब लोग सुधा रानी की जय पुकारने लगे ।



मैनेजर के आफिस के दरवाजे पर मटरू बीड़ी पर बीड़ी उड़ा रहा था। भीतर नरेन्द्र बहुत से रजिस्टर उलट पलट रहे थे। बहुत से कागज इधर-उधर फैले थे। कई फाइलें बिखरी थीं। नरेन्द्र बहुत व्यस्त थे। सुधा की मोटर रुकी। और सुधा उतर कर आफिस की ओर बढ़ी। मटरू खुश होकर खड़ा हो गया। उसने मिलिटरी ढङ्ग से सुधा को सलाम किया।

सुधा ने हँसकर कहा—“कहिये चाचा जी अच्छे हैं ?”

मटरू ने फिर सलाम करके कहा—“आपकी दया से सुधा रानी।”

सुधा ने सङ्केत से नरेन्द्र को पूछा—“कहाँ है ?”

मटरू ने चिक उठाकर कहा—“आइये भीतर हैं।”

नरेन्द्र ने खड़े होकर कहा—“आइये।”

“क्या मैंने आपके काम में विघ्न किया।”

“जी नहीं, मैं आपकी इन्तजारी ही कर रहा था, बैठिये।” उसने अपनी कुर्सी पर सुधा को बैठने का सङ्केत किया।

सुधा ने बैठते हुए मुस्कुराकर कहा—“आप मुझे मैनेजरी का काम सिखाना चाहते हैं।”

“जी हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है। मैं आपसे चाहूँगा कि आप कम से कम कुछ घण्टे आफिस में बैठकर मिल का काम-काज स्वयं देखें।”

“यह क्यों?”

“इसलिये कि जब तक आप सब काम स्वयं न समझेंगी, और मैनेजर की दया पर ही निर्भर रहेंगी तो आप खतरा उठा सकती हैं।”

“आज तक तो यों ही चल रहा था नरेन्द्र बाबू?”

नरेन्द्र ने रजिस्टर सुधा की ओर सरका कर कहा—“ये कागजात हैं और यह इस साल का चिन्ता है, जरा नजर कीजिये। ढाई लाख रुपयों का ओर-छोर नहीं मिलता है। ये एकदम किसी बड़े पेट में गये हैं।”

सुधा ने आश्चर्य से नरेन्द्र की ओर देखकर कहा—“इसका मतलब?”

“गबन।”

“ढाई लाख रुपयों का?”

“अभी सारे कागजात चेक नहीं हुए हैं, जिसने गबन किया है, वह बड़ा बुद्धिमान है, सब काम पूरी होशियारी से किया गया है, पर चूक उससे भी हो ही गई है, यह देखिये मैंने लाल पेन्सिल से निशान किये हैं, देखिये।”

सब कागजात को सुधा ध्यान से देखती रही, नरेन्द्र पास खड़ा होकर उलट-उलटकर उसे सब समझाने लगा।

सब देख-भाल कर सुधा ने भय से पीली पड़कर कहा—“यह सब रमेश बाबू की कारस्तानी है।”

“और आप उन्हें क्षमा न करें तो उन्हें जरूर जेल की हवा खानी पड़ेगी।”

“नहीं, नहीं, नरेन्द्र बाबू, ऐसा नहीं हो सकता। मेरे पिता जी....” उसने दोनों हाथों में मुँह ढाप लिया, फिर सिर उठाकर कहा—“नरेन्द्र बाबू, आप प्रतिज्ञा कीजिये, यह बात किसी से न कहेंगे।”

“आप इत्मीनान रखिये।” उसने सब कागजों को समेट कर सुधा को सौंपते हुए कहा—“इन महत्वपूर्ण कागजों को आप अपने कन्ट्रोल में आज से रखिये। मैंने एक सेफ खाली कर दी है, और सब कीमती डाक्यूमेण्ट उसी में रख दिये हैं, यह सूची है, और यह कुञ्जी है। इन कागजों पर भी अपनी सील मुहर कर वहीं रख दीजिये। और खबरदार रहिये किसी भी हालत में किसी के हाथ में यह चाभी मत दीजिये। इस गबन में सिर्फ इतना ही नहीं है, कि कुछ रुपयों का मामला है, कुछ ऐसी बात भी हैं कि जिनसे आपकी सारी जायदाद भी हड़प ली जा सकती है।”

सुधा ने घबराकर कहा—“आप क्या कहते हैं नरेन्द्र बाबू?”

नरेन्द्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसने उन सब कागजों को एक पैकेट में बन्दकर और सील मुहर करके सुधा के हाथ में दे दिया। सुधा ने कॉपते हाथों उस पर दस्तखत किया। और सेफ में उसे बन्दकर ताला लगा दिया।

नरेन्द्र ने कहा—“कल से आप रोज़ दो घण्टा आफिस का काम देखा कीजिये। यह कमरा आपही का आफिस रहेगा।”

“और आप?”

“मैं बगल के कमरे में ठीक ठाक कर लूँगा, लीजिये, आज ही शुरू कीजिये, ये कुछ ज़रूरी कागज़ हैं। सब पिछले उलके हुए मामले

हैं, सब पर मेरे नोट हैं। इन्हें तो आप अभी—आज ही समाप्त कर दीजिये।”

वह एक कुर्सी खींचकर बराबर सुधा की बगल में बैठ गया, और सब मामले सुधा को समझाने लगा। सुधा उन पर अपना मत लिखकर अपने हस्ताक्षर करने लगी।



१६

११ बज चुके थे। तमाशबीन गाना सुन सुनाकर चले गये थे, साजिन्दों को विदा करके केसर स्वयं सोने की जाने की तैयारी कर रही थी, परन्तु आज नरेन्द्र के आने की बात थी, उसके आने का समय यद्यपि बीत चुका था, परन्तु केसर को फिर भी कुछ आस अभी थी। इसी से वह अभी तक अनमनी सी बैठी थी। इसी समय किसी के जीना चढ़कर ऊपर आने की आहट मिली, केसर के मुँह पर प्रसन्नता झलकने लगी। परन्तु तुरन्त ही उसने देखा, आनेवाला नरेन्द्र नहीं, कैलाश बाबू हैं। इस समय कैलाश बाबू का वहाँ आना केसर को बिल्कुल पसन्द नहीं आया, फिर भी केसर को उसका स्वागत करना ही पड़ा।

कैलाश बाबू आकर मसनद पर बैठ गये। फिर उन्होंने मुस्कुरा कर कहा—“अच्छी हो केसर ?”

“जी।”

“आओ बैठो। वहाँ नहीं, यहाँ नजदीक। तुम्हारा तो दिन-दिन रक्क निखरता ही जाता है। और आज तो तुम्हारी खूब-सूरती गजब ढा रही है।” कैलाश बाबू ने खूब रसिकता दिखा कर हँस दिया।

केसर ने मुस्कराकर कहा—“अपनी-अपनी नज़र होती है, बड़े बाबू।”

“लेकिन सच जानो केसर, मुझे तुमसे दिली मुहब्बत है। पर तुम हो कि हाथ नहीं रखने देती। जो माँगों तुम्हें दूँ, एक बार मुँह फाड़कर माँग लो। हाँ, कुछ शगल भी तो चलता रहे, निकालो।”

“आपकी दया बनी रहे, यही भीख माँगती हूँ, बस!” वह उठी और शराब की बोतल और गिलास सामने रखकर कुछ हटकर बैठ गई।

“यह न होगा, जाम भरो—पियो और पिलाओ।”

केसर ने भर कर पैग दिया। कैलाश ने पैग लेकर कहा—“तुम भी पियो भाई।”

“माफ कीजिये। आप जानते ही हैं, मैं नहीं पीती।”

कैलाश ने शराब मुँह में उडेल कर कहा—“बड़ो शैतान हो तुम।”

“वेश्या से बढ़कर शैतान दुनियाँ में कौन है। जिसके बोलने में छल, हँसने में छल, प्यार करने में छल। वह शरीर को बेचती है, आत्मा को बेचती है। जीवन का सार जो प्यार है उसे भी बेचती है।”

कैलाश ने—इसी बीच लबालब गिलास भरा और गटागट हलक से उतार कर बोला—“तो बेच दो, आज सब कुछ। जो माँगों सो दूँ। खोल दो गाँठ और भर लो मुराद की भोली।”

“कैलाश बाबू! आप बड़े आदमी हैं। आपके करने के योग्य बहुत सौदे हैं। अब इस गन्दे सौदे में मत गिरिये। हम पाप, मरी, सर्वनाश सब कुछ हैं। जब तक मनुष्य जाति रहेगी, पृथ्वी रहेगी, सृष्टि रहेगी, हम हैं और रहेंगी। रोग के कीटाणुओं की भोंति। किनारे की दलदल की भोंति। आप इस दलदल से दूर रहिये।”

इसी समय फिर किसी के ऊपर आने की आहट सीढ़ियों पर मिली । केसर ने समझा नरेन्द्र है परन्तु कैलाश ने चुपचाप एक गिलास शराब का और चढ़ा लिया ।

इसी समय गौरीनाथ ने कमरे में प्रवेश किया । कैलाश चन्द्र ने खुश होकर कहा—“आओ भाई गौरी, बड़ी देर से मैं तुम्हारी इन्तजारी कर रहा था । लो, पियो यार !” उन्होंने भर पैग उसकी ओर बढ़ाया ।

“तो मैं भी वादे के अनुसार आ गया ।”

उसने पैग लेकर और शराब पी कर कहा—“केसर बाई, आज कुछ ठाठ नहीं जमेगा क्या ?”

“नहीं, आज तबियत ठीक नहीं है बाबू ।”

“इसी से कहता हूँ, पिया करो । लो, पियो एक पैग । अभी तबियत भुरभुरा उठेगी ।” उसने पैग भर दिया ।

“जी नहीं, माफी चाहती हूँ ।”

कैलाश ने हँसकर कहा—“तुम लो भई गौरीनाथ, यार तकल्लुफ न करो, यह दफ्तर नहीं ।” गौरीनाथ ने पीते हुए कहा—“जी नहीं ।”

अब कैलाश ने जरा इधर उधर करके कहा—“केसर बाई, बुरा न मानना । मैं जरा गौरी से कुछ मामले की बात....”

“हाँ-हाँ” और वह उठकर भीतर चली गई ।

कैलाश ने शराब का पैग गौरी के हाथ में देकर कहा—“पियो भई । हाँ, मेरी चीज़ ।”

गौरी ने शराब पीकर कहा—“लाया हूँ”, उसने जेब में हाथ डालते हुए कहा—“परन्तु जान पर खेलकर बड़े बाबू । जो बिटिया को मालूम हो जायगा तो मैं कहीं का न रहूँगा ।”

कैलाश ने गिलास भरते हुए कहा—“पागल हुए हो ? मालूम कैसे होगा ? मैं जानूँ या तुम, लो पीओ इसी बात पर ।”

गौरी ने गिलास ले लिया । कैलाश ने हाथ फैलाकर कहा—
“लाओ दो ।”

गौरी ने शराब पीकर कुछ हिचकते हुए जेब में हाथ डाला और
कहा—“लेकिन रुपया बड़े बाबू ?”

“हद कर दी तुमने यार गौरी, मैं क्या बिना रुपये के आया हूँ ।
जो कह दिया, सो कह दिया । तुम जानते ही हो मेरी जवान पत्थर
की लकीर है ।”

“सो तो है, लेकिन....”

कैलाश ने गिलास भरकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—“पियो
भाई”, और जेब से नोटों का पुलिन्दा निकाल और फिर रखकर
कहा—“अब तो इत्मीनान हुआ ।”

गौरी ने हाथ फैलाकर कहा—“तो लाइये दीजिये ।”

“पहले देखूँ तो, सही चीज भी लाए हो या नहीं ।”

“वाह, सही चीज लीजिये ।”

“तो दो भाई, अजब हुज्जती हो ।”

“रुपया दीजिये बड़े बाबू ।”

कैलाश ने गुस्से से तनकर कहा—“इतना अविश्वास ?”

“अविश्वास नहीं ।”

कैलाश ने डपट कर कहा—“तो दो फिर ?”

“तो इस हाथ दीजिये, उस हाथ लीजिये ।”

“क्या मतलब ?”

“मीठे के लिये जूठा खाया जाता है बड़े बाबू ।”

“हरामी, क्या तू मुझे जानता नहीं है, तेरी इतनी
मजाल ।”

गौरी ने उठते हुए कहा—“मुझे माफ कीजिये बड़े बाबू, मैं
जाता हूँ ।”

कैलाश ने कहा—“जाता कहाँ है सूअर ।” और उसका हाथ पकड़ कर खींच लिया ।

गौरी ने चीखकर कहा—“छोड़िये छोड़िये, मुझे जाने दीजिये ।”

परन्तु कैलाश ने गौरी को गिराकर उसे दबोचते हुए कहा—
“साले, जान से मार डालूँगा ।”

“मुझे जाने दीजिये बड़े बाबू ।” उसने छूटने को छुटपटा कर कहा ।

कैलाश ने तैश में आकर कहा—“तो ले ।” उसने बोतल उठाकर उसके सिर पर दे मारी । सिर फट गया । गौरी छुटपटाने लगा । कैलाश उसकी जेब में से कागज निकाल कर भागा—परन्तु भीतर से केसर, और दूसरी तरफ से नरेन्द्र आते हुए उससे टकरा गये । कैलाश गिर पड़ा, परन्तु फिर उठकर पुलिस, खून, पुलिस, खून, चिल्लाता हुआ भाग गया ।

नरेन्द्र ने लाश की जाँच करके कहा—“मर गया ।”

केसर का चेहरा सफेद हो गया । उसने कहा—“हे भगवान् अब क्या होगा ?” परन्तु इसी समय दलबल सहित पुलिस आ पहुँची ।

इन्स्पेक्टर ने पिस्तौल नरेन्द्र की ओर सीधी करके कहा—“पकड़ो इस खूनी को ।”

नरेन्द्र ने शान्त भाव से कहा—“चलो मैं चलता हूँ ।”

केसर कुछ बोलना चाहती थी, पर नरेन्द्र ने इशारे से उसे रोक दिया । पुलिस नरेन्द्र को हथकड़ी डालकर ले गई ।



१७

इस गिरफ्तारी से नगर में हलचल मच गई। दैनिक पत्रों में शीर्षक छुपे—

“वेश्या के घर में खून।”

“एक भारी मिल का मैनेजर खूनी।”

“खूनी रङ्गे हाथों पकड़ा गया।”

“खूनी की दिलचस्प कहानी।”

“वह सजायाफ्ता पुराना खूनी डकैत है।”

हॉकर दौड़-दौड़ कर सुर्खियाँ चिल्लाते धड़ाधड़ अखबार बेचते फिर रहे थे। प्रातः काल था। सुधा वरामदे में बैठी अखबार पढ़ रही थी। उपर्युक्त शीर्षक पर उसकी दृष्टि जाते ही वह घबड़ाकर सोचने लगी कि कहीं वह नरेन्द्र ही तो नहीं है। इसी समय कैलाश बाबू और रमेश धड़धड़ाते हुए एक-एक अखबार हाथ में लिये चले आये।

रमेश ने अखबार सुधा पर फेंक कर कहा—“लो देखो, उस साले डकैत की करतूत ।”

कैलाश धड़ाम से कुर्सी पर गिर कर कहने लगे—“मेरा मुँह काला हुआ बिटिया । जगदम्बा बाबू....हो-हो-हो” उन्होंने आँखों पर हथेली रख कर सिर हिलाते हुए कहा—“तुम्हारे मेरे हाथ सोंप गये थे । मैंने कैसे उस खूनी डकैत को यहाँ रहने दिया । पर बेटी, बुरा न मानना । दोष तुम्हारा भी है । इसी से कहते हैं बड़े बूढ़े की बात....” फिर वे हाथों में सिर देकर बैठ गये ।

सुधा का चेहरा सफेद हो गया । उसके मुँह से बोली नहीं निकली ।

रमेश ने जलती हुई आँखों से सुधा को देखते हुए और फिर दोनों मुट्ठी बाँधकर दाँत मिसमिसाते हुये कहा—“इज्जत गई बाबू जी, इज्जत गई ।”

“लेकिन घबड़ाने से तो न चलेगा भाई । गया कम्बख्त, चढ़ेगा फाँसी पर । जगदम्बा बाबू, तुम तो भाई, मजे में भगवान की गोद में जा बैठे । पर मुझे कैसे दुख में डाल गये, देखो तो । हो, हो, हो, हो,” वे दोनों हाथों में सिर देकर आँसू गिराने लगे—फिर सिर उठाकर रमेश से बोले—“अब तुम रमेश, जरा मिल का सब सरंजाम ठीक ठाक रखो । न जाने वह अभागा खूनी क्या गड़बड़ कर गया होगा, कितनी लूट की होगी उसने !”

“अब भोगो सुधा अपनी करनी का फल । मैं मिल में कदम भी नहीं दूँगा ।”

“बस तेरा यही गुस्सा तो खराब है रमेश । माना कि बात गुस्से की ही है । पर भाई, आखिर नुकसान भी तो अपना ही है । आज नहीं तो कल तुम दोनों को एक होना है । अहा जगदम्बा बाबू की कितनी इच्छा थी कि युगल जोड़ी को आँखों से देखूँ । हो, हो, हो, हो,

(आँखें मूँद कर) नहीं-नहीं भई तुझे मान अपमान सब भूलकर मिल को देखना पड़ेगा ।”

“वह साता डाकू सब लूट ले गया होगा । कुछ छोड़ा होगा उसने ?”

“इस बार चढ़ेगा फाँसी पर । अब उसकी बात क्या ? कहा है—बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेहु ।”

सुधा अधीर होकर उठ खड़ी हुई । कैलाश ने छिपी आँखों से देखा । फिर रमेश से कहा—“चलो रमेश, बिटिया को ज्यादा तङ्ग न कर । वह शर्मिन्दा है । अरे सोने की है मेरी बिटिया ! जगदम्बा बाबू, हो, हो, हो”, वे बड़ी देर तक आँखें बन्द किए बैठे रहे । सुधा तेजी से कमरे से बाहर निकल कर ऊपर चली गई और अपने निजी कमरे में जाकर दर्वाजा जोर से बन्दकर पलङ्ग पर पड़कर रोने लगी ।

निरुपाय पिता पुत्र दोनों वहाँ से चले गये ।

बहुत देर तक सुधा अपने शयनगृह में पड़ी रोती रही । उसकी आँखें लाल होकर सूज गईं । वस्त्र और बाल अस्त-व्यस्त हो गये । बूढ़ी दासी रधिया की माँ ने द्वार खटखटाया ।

सुधा ने भरपूर स्वर से कहा—“क्या है ?”

रधिया की माँ डरती-डरती भीतर आई । उसने कहा—“बिटिया रानी, महाराज बड़ी देर से रसोई लिये बैठे हैं ।”

“उनसे कह दे जाँय ।” पर फिर भी रधिया की माँ खड़ी ही रही ।

सुधा ने गुस्से में भर कर कहा—“खड़ी क्यों है ?”

“बिटिया रानी एक औरत....”

सुधा ने क्रोध से कहा—“कौन औरत ? मैं इस वक्त किसी से नहीं मिल सकती ।”

रधिया ने धीरे से कहा—“दुखिया औरत है । बड़ी देर से बैठी रो रही है । कहती है, रानी जी से बिना मिले नहीं जाऊँगी ।”

“वह क्या कोई मजदूर औरत है ?”

“नहीं, कोई और है, शहरी है ।”

“कौन है वह ?”

“यह वह कुछ नहीं बताती ।”

सुधा ने कुछ रुककर कहा—“जा मैं अभी आती हूँ ।” रधिया चली गई । सुधा कपड़े ठीक कर और मुँह धोकर धीरे-धीरे नीचे आई । उसने देखा एक स्त्री नीचा मुँह किये बैठी है । अस्त-व्यस्त वस्त्र, चेहरा सफेद, आँखें सूजी हुई । वह सुधा को देखकर खड़ी हो गई ।

सुधा ने देखते ही द्रवित होकर कहा—“मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकती हूँ बहन ?”

केसर ने नीची नज़र करके कहा—“मैं केसर हूँ ।”

सुधा ने नरेन्द्र से केसर के विषय में सुना था । वह यह भी सुन चुकी थी कि उसी के घर खून हुआ है । वह कुछ देर तक संदिग्ध दृष्टि से केसर की ओर देखती रही, फिर निकट आकर कहा—“बैठ जाओ ।” वह पास पड़ी एक कोच पर बैठ गई, केसर भी बैठ गई ।

केसर ने कहा—“नरेन्द्र बाबू बेकसूर हैं । उन्हें बचाइये, भीख माँगती हूँ ।” वह उठकर सुधा के पैरों में आँचल पसार कर गिर गई ।

सुधा ने नीची दृष्टि किये धीरे से पूछा—“वह काम क्या तुमने किया ?”

केसर ने दृढ़ता से कहा—“नहीं ।”

“तब ?”

केसर ने इधर-उधर भयभीत दृष्टि से देखा—और नीची नज़र कर ली ।

सुधा ने कहा—“कहो बहन ?”

केसर ने आँसू बहाते हुए कहा—“कैसे कहूँ ?”

“तुम्हें डर किसका है ?”

“मैं बेबस बदनसीब औरत हूँ रानीजी । मैं बेकसूर हूँ, आप विश्वास कीजिये ।”

“विश्वास करती हूँ बहिन, जो सच्ची बात है कहो ?”

केसर ने कुछ देर रुककर कहा—“आप विश्वास करेंगी ।”

“करूँगी ।”

केसर ने एक बार सुधा की ओर दृष्टि उठाई, फिर भयभीत दृष्टि से इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—“कैलाश बाबू ।”

सुधा चौंककर खड़ी हो गई । उसने कहा—“क्या कहा ?”

केसर ने आँसू गिराते हुए कहा—“इन्हीं का काम है रानीजी ।”

सुधा कुछ देर चुपचाप सोचती रही । फिर उसने गम्भीर मुद्रा से कहा—“क्या नरेन्द्र बाबू ने उन्हें देखा था ।”

“भागते हुए देखा था ।”

“फिर उन्होंने कहा क्यों नहीं ?”

“यह तो वहीं जानें । वे तो मुझे भी होठ बन्द रखने को कह गये ।”

सुधा ने कुछ सोचकर कहा—“हमें उनसे मिलना होगा ।” उसने रधिया की माँ से पुकार कर कहा—“शोफर से कह, मोटर निकाले जल्द ।” फिर केसर से कहा—“तुम तनिक ठहरो बहिन, मैं अभी आती हूँ” । वह ऊपर चली गई । कुछ देर में कपड़े बदल कर आई । दोनों मोटर में बैठकर जेल की ओर चल दीं ।



१८

सुधा को देखते ही नरेन्द्र ने अधीर होकर कहा—“आप क्यों आईं ?”

“आप समझते थे, मैं आराम से घर में बैठी रहूँगी।”

“लेकिन....” नरेन्द्र की बात हाँठों ही में रह गई। उसकी दृष्टि सुधा की सूजी हुई आँखों में उलझ गई। वह एकटक सुधा के मुँह पर फैली वेदना, व्यग्रता और व्याकुलता को पढ़ने लगा।

सुधा ने कहा—“मुँह पर ताला जड़ने से फायदा ?”

“आप सब बात नहीं जानतीं ?”

“अब भी जानने से कुछ रह गया ?”

“आप नहीं जानतीं, नहीं जानतीं।” वह बेचैनी से कोठरी में घूमने लगा।

“जो बात है, आप उसे प्रकट कर दीजिये। अपराधी को दण्ड पाना होगा।”

“यह कैसे हो सकता है सुधा देवी । (कुछ सोचकर) नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता । केसर बहिन, तुम्हें अपने होठ सीने होंगे ।”

“तो हमें स्वयं ही अपना कर्त्तव्य निश्चय करना होगा । आप हमारी मदद नहीं करेंगे ?”

“लेकिन मैं....मैं....”

“आप मुझे बाध के मुँह में डाल देना चाहते हैं ।”

“नहीं-नहीं लेकिन ।” उसने दोनों हाथों से अपना माथा दबा लिया ।

“आप सच बात कह दीजिये ।”

नरेन्द्र ने धीरे से कहा—“नहीं कह सकता ।”

“आखिर क्यों ?”

“उससे कुछ लाभ नहीं होगा । पुलिस विश्वास नहीं करेगी । प्रमाण बिल्कुल मेरे विरुद्ध हैं, फिर और भी बहुत सी बातें हैं सुधा देवी, आप सोचिये तो ?”

“मैंने सोच लिया है, मैं दृढ़ हूँ ।”

“परन्तु आपके पिता के मित्र, आपके अभिभावक और चाचा हैं । इसके सिवा रमेश बाबू से....आप सोचिये तो ।”

“आप ऐसी बातें कहते हैं जैसे कुछ जानते ही नहीं । और वे सब बातें जो मालूम हुई हैं ।”

“ठीक हो जायगी सुधा देवी, आपकी रमेश बाबू से शादी हो जाने पर....” रमेश का कण्ठ स्वर काँप उठा ।

सुधा ने चीखकर कहा—“चुप रहिये आप । तो मैं अकेली ही अपना काम करूँगी ।” टपटप आँसू उसके नेत्रों से भरने लगे ।

नरेन्द्र ने कहा—“आप घबराइये नहीं । यह पुराना जेल का पंखी है । खूनी डाकू है । इसके लिये कोई रज्ज करने वाला भी नहीं है । इसके फाँसी पड़ने से दुनियाँ के किसी काम में हर्ज न होगा, सुधा

देवी । किन्तु आपके पूज्य पिता की कृपाओं का, आपकी कुछ और सेवा करके बदला चुका जाता तो बड़ा अच्छा होता ।”

“आप ऐसी बातें क्यों करते हैं ?”

नरेन्द्र ने सुधा की बात सुनी-अनसुनी करके कहा—“केसर बहिन, दिल छोटा न करना, याद रखना तुम्हारा त्याग बहुत पुण्यदान देगा ।”

“मैं मर जाऊँगी, पर तुम्हारे आदेश के विपरीत न करूँगी ।”

सुधा ने कहा—“नहीं बहिन, यह न होगा । हमें सब प्रकट करना होगा ।”

नरेन्द्र ने कहा—“सुधा देवी, मटरू मेरा जेल का साथी है । उसमें एक पुण्य आत्मा है, जो आपके प्रति प्रेम और भक्ति से शराबोर है । उसपर विश्वास करना और जहाँ तक सम्भव हो, घर से बाहर उसकी आँखों के सामने रहना ।”

“अच्छा ! तो मैं वकीलों से सलाह करके सब बातें प्रकट किये देती हूँ ।”

“पहले एक बार मटरू चचा से बात कर लीजिये, सुधा देवी ।”

“यह ठीक है ।”

“और केसर बहिन जैसे सम्भव हो, वह कागज कैलाशबाबू से तुम दस्तखत कराके सुधा देवी को दे देना ।”

“मैं अवश्य ले लूँगी ।”

इसी समय सिपाही ने आकर कहा—“समय हो गया ।” सुधा लड़-खड़ाती, आँसू पोछती हुई पीछे हटी । केसर ने उसे सहारा दिया । नरेन्द्र ने ऊँची आवाज से कहा—“सुधा देवी, अपनी रक्षा से बेखबर मत रहिये ।”

सुधा ने क्षण भर ठिठककर कहा—“मैं जल्दी ही फिर आऊँगी ।”

“बिटिया रानी, आप तनिक भी चिन्ता मत कीजिये ।”

घर पहुँचते ही सुधा ने मटरू को बुला भेजा, मटरू ने सब बातें सुन कर कहा—“कैलाश बाबू से जरा मैं शतरंज खेलूँगा।” फिर उसने हँसते हुए कहा—“देखना, दोनों चचा कैसी-कैसी चाल चलते हैं।”

“परन्तु हमें सब बातें प्रकट करके असल अपराधी को पकड़वाना और बेकसूर को छुड़ा लेना चाहिये।”

“नहीं, नहीं रानी बिटिया, मटरू चचा पर सब छोड़ दो। आप किसी तरह उनपर यह प्रकट न करें कि आपको उन पर सन्देह है। और केसर बिटिया, तुम तो उनके साथ ऐसी घुल जाओ, जैसे खौंड में पानी घुल जाती है। एकदम शर्यत, पहले वह काग़ज हाथ करना होगा।”

“और मिल का प्रबन्ध?”

“वह रानी बिटिया स्वयं करेंगी।”

“रमेश बाबू आवेंगे तो?”

“तो मटरू चचा उनका स्वागत करेंगे, खातिर करेंगे।”

“पर यह सब नाटक रचने से फायदा?”

“वाह फोड़े को इसी तरह सहला-सहलाकर अच्छा किया जाता है बिटिया रानी, आप तनिक भी चिन्ता न करें, सब ठीक हो जायगा।”



१६

सुधा ने आश्चर्यजनक दृढ़ता और तत्परता से मिल का प्रबन्ध उम्हाल लिया। नित्य प्रति ठीक समय पर आफिस में आ बैठती और परिश्रम एवं लगन से पाँच बजे तक और कभी-कभी सूरज छेपने तक काम करती रहती। मटरू छाया के समान सुधा के पीछे रहता। एक क्षण को भी वह सुधा को अपनी नजर से ओझल नहीं आभूता था।

अभी दोपहर की खाना खाने की घंटी नहीं बजी थी। सुधा अपने आफिस में बैठी कागज पत्र देख रही थी। मटरू ठाट से चिक के गहर बैठा बीड़ी पी रहा था। इसी समय रमेश आकर चिक उठाकर भीतर जाने लगा।

मटरू ने आगे बढ़कर कहा—“सलाम हुजूर, जरा ठहरिये, कार्ड शीजिये।” वह लोहे की दीवार की भोंति दर्वाजे के सामने अड़कर जड़ा हो गया। रमेश ने उसे लाल-लाल आँखों से घूरते हुए कहा—

“कैसा कार्ड ?”

“अपने नाम का साहेब, आप रानी बीटिया से मिलना चाहते हैं न ?”

“क्या वे भीतर हैं ?”

“जी हाँ ।”

“तो मैं भीतर जाता हूँ ।” वह मटरू को धक्के देकर भीतर जाने की चेष्टा करने लगा ।

परन्तु मटरू ने अधिक दृढ़ता दिखाते हुए कहा—“कार्ड साहेब—कार्ड ।”

“क्या तू मुझे नहीं जानता ?”

“क्यों नहीं, खूब अच्छी तरह जानता हूँ और आप भी मुझे बखूबी जानते हैं ।”

“तो फिर कैसे रोकता है ?”

“मैं हुस्म का बन्दा हूँ, कार्ड दीजिये, इत्तला कर दूँ, तब आप जायँ खुशी से, बस हुज्जत करना बेकार है ।”

रमेश ने क्रोधित होकर जेब से कार्ड निकाल कर फेंक दिया, मटरू कार्ड लेकर भीतर गया । फिर बाहर आकर उसने कहा—
“जाइये हुजूर ।”

रमेश भीतर गया तो मटरू भी पीछे-पीछे भीतर जा पहुँचा ।

सुधा कुछ लिख रही थी । रमेश ने पहुँचते ही गुस्सा भर कर कहा—“यह क्या हिमाकत है सुधा ?”

“क्या हुआ ?”

“अब मुझे भी कार्ड दिखा कर भीतर तुम्हारे पास आना पड़ेगा ?”

सुधा ने हँसकर मटरू की ओर देखा और कहा—“क्यों मटरू चचा, तुम घोड़ा गधा सब को एक ही लाठी से हाँकते हो ? ये रमेश बाबू

तो घर के आदमी हैं। समझे। उसने आँख से संकेत किया। फिर रमेश से कहा—“बैठिये।”

मटरू ने आँखों में शराब भर कर कहा—“अब याद रखूँगा ब्रिटिया रानी।”

रमेश ने डपठ कर कहा—“तुम बाहर जाओ गधे।”

मटरू ने उसी तरह खड़े होकर कहा—“हुकुम नहीं है, हजूर!”

रमेश ने सुधा की ओर जलती आँखों से देखा और कहा—
“इसका क्या मतलब है?”

सुधा ने फिर हँस कर कहा—“खड़ा रहने दीजिये, रमेश बाबू।” और वह इस प्रकार काम में व्यस्त हो गई मानो कोई बात नहीं है।

रमेश आपे से बाहर हो गया। उसने खड़े होकर कहा—

“तो मैं जाता हूँ?”

“क्यों बैठिये न।”

“नहीं।”

और वह तीर की भाँति वहाँ से चल दिया।



अपने खास कमरे में सुधा बैठी किसी मासिक पत्र के पन्ने उलट रही थी। पढ़ने में उसका मन नहीं लग रहा था। भौँति-भौँति के परस्पर विरोधी भाव उसके मस्तिष्क में उठ रहे थे। सबसे ऊपर वह रमेश के अद्भुत चरित्र पर विचार कर रही थी। वह जितना ही विचारती थी उतना ही उलझन में फँसती थी। वह उस अद्भुत व्यक्ति का व्यक्तित्व ठीक-ठीक समझ नहीं रही थी, पर उसका मन जो बरबस उसकी ओर खिंचा जा रहा था, उसे वह समझ कर भी रोक नहीं पा रही थी।

इसी समय लाठी टेकते हुये कैलाश बाबू ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने प्रसन्न मुद्रा से कहा—“सुन कर मुझे इतना आनन्द हुआ बिटिया, कि गठिया से पीड़ित होने पर भी तुम्हें बधाई देने दौड़ा चला आया। रह न सका। जीती रहो बेटी, अच्छा किया। आफिस में बैठ कर सब काम स्वयं देखना शुरू कर दिया। यही तो बात है ?

स्त्रियों को भी तो पुरुषों की भोंति अधिकार है। फिर मेरी बेटी तो बहुत समझदार है, यही मैं चाहता हूँ और यही आशा रखता हूँ। वह साला डाकू, खैर जाने दो। जगदम्बा बाबू हो-हो-हो-हो, कितना प्रसन्न होंगे। अहा! ईश्वर, तेरी लीला अपरंमपार है।” इतना कहकर उन्होंने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया।

सुधा का हृदय घृणा और विरक्ति से भर गया। पर उसने मन की विरक्ति को रोककर कहा—“चाचाजी आपके लिये चाय मगाऊँ ?”

“ना बिटिया, तकलीफ मत करो। डिसिम्निन-डिसिम्निन, आफिस का डिसिम्निन तोड़ना आफिसर का सब से बड़ा अपराध है, लेकिन उस नीच मजदूर का रमेश से कार्ड माँगना, अपने ही आफिस में अपने ही आफिसर से, बिटिया, कुछ ठीक नहीं हुआ। यह तो बे-अदबी हुई बेअदबी, क्या कहती हो, खैर, मैं तो अब बूढ़ा हुआ। आज मरा कल दूसरा दिन, फिर मैं ठहरा विरक्त आदमी, पर तुम दोनों तो दो नहीं हो, जगदम्बा बाबू, हो-हो-हो-हो।”

उन्होंने फिर दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया।

सुधा ने तंग आकर रधिया की माँ को पुकार कर कहा—“अरी, चाचाजी के लिये चाय ले आ।”

परन्तु कैलाश बाबू अपनी धुन में बकते रहे—“रमेश तुम्हारी चिन्ता में घुल गया है, अहा, जिस दिन भगवान् इन मेरे दोनों कर्मनिष्ठ सन्तानों की जोड़ी मिलाकर अपनी लीला का रथ चलायेंगे, पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आवेगा।”

वे बड़ी देर तक भक्ति भाव में तल्लीन से बैठे रहे।

रधिया की माँ ने चाय लाकर टेबुल पर रख दी। सुधा चाय बनाने लगी, रधिया की माँ चली गई।

कैलाश बाबू ने कहा—“हाँ खूब याद आया बिटिया, जरा पुराने

दस्तावेज़ कागजात देखना होगा, एक भंभट उठ खड़ा हुआ है, उसे सुलभाना होगा।”

सुधा ने प्याला उनकी ओर सरका कर कहा—“कैसा भंभट ?”

“योंही कुछ हिस्सेदारों का भमेला है” उन्होंने चाय की चुस्की लेकर सुधा की ओर घूरते हुए कहा—“जबतक मेरी जिन्दगी है, मैं भला इन बातों से असावधान रह सकता हूँ ?”

परन्तु सुधा बैठी ही रही। उठी नहीं। कैलाश बाबू ने अधीर होकर कहा—

“देर हो रही है बेटी।”

“न हो तो, उन लोगों को कल आफिस में मेरे पास भेज देना चाचा जी, मैं देख-भाल लूँगी।”

कैलाश बाबू ने असंयत होकर प्याला टेबुल पर पटक दिया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—“यह कैसी बात ? मुझे कागजात में कुछ और बातें भी देखनी हैं।”

“और बातें क्या ?”

“तो तुम मुझसे कैफियत तलब करती हो ?”

सुधा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह बिना हिले-डुले उसी प्रकार बैठी रही। कैलाश ने कुछ क्षण प्रतीक्षा करके कहा—“उठो बेटी देर हो रही है, कागजात निकाल दो।”

“क्यों ?”

“कहता तो हूँ, कारण है।”

“परन्तु कारण क्या है यह तो बताया नहीं।”

“इसका यह अर्थ है कि तुम्हें मेरा विश्वास नहीं है।”

“विश्वास की बात नहीं चाचा जी, जब मैं सब काम स्वयं देख-भाल करती हूँ, तो मुझे सब समझना चाहिये या नहीं ? आखिर कहाँ

तक आपके बूढ़े शरीर पर बोझ डालकर आपके भजन पूजन में विघ्न डालूँ ? एक प्याला चाय और दूँ चाची जी ?”

“नहीं मैंने जगदम्बा की इज्जत का ख्याल करके इतना दुःख उठाया, उनकी जायदाद, कारोबार और बेटी की मदद की। उसका बदला यह कि मेरा तुम इस तरह अपमान करने लगी। मेरा इतना मना करने पर भी तुमने उस चोर डकैत को मैंनेजर बनाया। अब वह खून करके गया जेल, चढ़ेगा फाँसी पर। अब कहो—इसमें किसकी बदनामी हो रही है ?”

परन्तु सुधा ने कोई जवाब नहीं दिया।

कैलाश बाबू ने कहा—“चुप क्यों हो जवान दो।”

सुधा ने धीरे से कहा—“क्या जवाब दूँ, जो बात भूठ है, वह क्या आप नहीं जानते ?” उसने एक भेद भरी दृष्टि कैलाश पर डाली। कैलाश ने घबराकर कहा—“क्या मतलब तुम्हारा ?”

“मतलब कुछ नहीं चाचा जी। लीजिये चाय पीजिये।” उसने प्याले में चीनी डाली। परन्तु कैलाश लाठी उठाकर वहाँ से जल्दी से चले गये। उन्होंने न चाय पी और न देखा सुधा की ओर।



२१

आफिस के सब योरोपियन और हिन्दुस्तानी कर्मचारियों का अभिवादन लेती हुई वह नरेन्द्र के कमरे में पहुँची। नरेन्द्र के टेबुल की सफाई कर उसने उसे ताजे फूलों के गुलदस्तों से सजाया। फिर अपने आँचल से उसकी कुर्सी को साफ किया। इस समय एक बूँद आँसू उसकी आँखों से टपक पड़ा। उसने नरेन्द्र की कलम का चूमकर छाती से लगा लिया। फिर वह दूसरे कमरे में—अपने आफिस में जा बैठी। और घण्टी बजाई। एक यूरोपियन लड़की (प्राइवेट सेक्रेटरी) अदब से आ खड़ी हुई।

सुधा ने कहा—“धन्यवाद मिस सूफी, पर कुछ मिनिट ठहरो, अभी मेरे पास राधिका बाबू को भेज दो।”

सूफी झुककर चली गई। बूढ़े राधिका बाबू नाक की बड़ी नोक पर चश्मा चढ़ाये चुपचाप सामने आ खड़े हुए। एक छोकरा चपरासी फाइलों के गड्ढर, एक के बाद दूसरा टेबुल पर ला-ला कर रखने लगा।

सुधा ने राधिका बाबू से कहा—“आपका पुर्जा मिला था बड़े बाबू, कहिये, क्या दिक्कत है ?”

“बारह लाख रुपये हाथ में न होने से हम बर्बाद हो जावेंगे रानी बिटिया, हमारे कारबार का टाट उलट जायगा ।”

“क्यों ?”

“कल हमें १२ लाख की हुण्डियों का भुगतान करना है । हमारा रुपया जिन फर्मों पर पावना है, यह उसकी सूची है, पर उनसे समय पर कुछ मिलने की आशा नहीं है ।”

“लेकिन यह सब एकाएक हुआ कैसे बड़े बाबू ।”

“कहते नहीं बनता । यह सब रमेश बाबू, कैलाश बाबू की कारस्तानी है । घर-घर जाकर उन्होंने सब हुण्डियाँ जमा की हैं । अब कल दस बजे हमें रुपया भुगतान करना ही होगा ।”

“ठहरो, हमें कितना रुपया देना है ।”

“बारह लाख हुजूर ।”

“कब तक ?”

“कल दस बजे तक ।”

“अपने पास कुल कितनी रकम है ?”

“मुश्किल से ५०, ६० हजार ।”

“पावना कितना है ?”

“लगभग इतना ही । यह सूची है, पर यह रुपया मिलने की आशा नहीं है ।”

“क्यों ?”

“रमेश बाबू के बहकाने से ।”

सुधा कुछ देर सोचती रही फिर बोली—“अच्छा, आप अपना सब रुपया तैयार रखें, और वह सूची मुझे दें ।”

“लीजिये ।”

सुधा ने एक सरसरी दृष्टि लिस्ट पर डाली, फिर कहा—“बाहर से मटरू चचा को भेज दीजिये । और आप शाम को मुझसे मिलिये ।” मटरू सामने आ खड़ा हुआ । सुधा ने कहा—“तुम्हें अभी मेरे साथ चलना होगा चचा, जरा गाड़ी मँगवा लीजिये ।”

मटरू तेजी से गाड़ी लेने चला गया ।

सुधा ने दिन भर पावनेदारों के घर-घर जाकर दौड़-धूप की तथा रुपया वसूल किया । जब शाम को मटरू के साथ वह बँगले पर पहुँची तब गिन कर देखा तो कुल ४० हजार थे । वह सोचने लगी, केवल चालीस हजार । सब मिलकर हुए १ लाख । फिर उसने सेफ खोलकर ज़ेवर का डब्बा निकाला । एक-एक गहना निकालकर टेबुल पर सजाया और कुछ लिखना प्रारम्भ किया । मटरू चुपचाप खड़ा देखता रहा । इसी समय राधिका बाबू के आने की सूचना मिली । राधिका बाबू को देख कर सुधा ने कहा—

“ये केवल ४० हजार मिले हैं । ये ज़ेवरात ५ लाख में बिक सकते हैं । सब मिलकर हुआ ६ लाख । अब रहा ६ लाख और । उसका अभी तो कुछ बन्दोबस्त नहीं है । अभी आप यह रकम ले जाइये, ज़ेवर बेच डालिये और रुपया दस बजे तैयार रखिये । शेष का प्रबन्ध अभी सोचा जायगा ।”

राधिका बाबू ने हिचकते हुए कहा—“न हो तो रानी बिटिया, रमेश बाबू को मना लिया जाय, उनके पास रुपया है वे दे सकते हैं !”

“मैं देख लूंगी, आप जाइये, अपना प्रबन्ध कीजिये ।”

कुछ देर राधिका बाबू सिर नीचा किये खड़े रहे । फिर रुपया और जवाहरात समेटकर धीरे-धीरे चले गये ।

मटरू ने चल चञ्चल होकर कहा—“रानी बिटिया, मैं भी जाऊँ जरा ।”

“अभी नहीं मटरू चचा ।”

“एक काम है रानी बिटिया ।”

“अच्छा जाओ ।”

“रानी बिटिया, चिन्ता मत करो, खा-पीकर आराम करो, सब ठीक हो जायगा ।”

सुधा ने मुस्कराकर कहा—“अच्छा ।”

मटरू ने लपककर राधिका बाबू का पीछा किया । उसने पुकारा—
“अजी राधिका बाबू, ओ बड़े बाबू ।”

संध्या के उस अंधकार और सन्नाटे में राधिका बाबू मटरू को इस प्रकार पीछे दौड़ते देख भय और शंका से भर गये ।

मटरू ने उनका हाथ पकड़कर कहा—“बड़े बाबू, आपने कहा था न कि कैलाश बाबू के घर रुपया है ।”

“है क्यों नहीं, मिल में गवन किया है, नीलाम अपने नाम छुड़ाकर बिटिया की जमींदारी बेच दी है, परसों ही रुपया आया है ।”

“और ये हुंडियों ?”

“सब उन्हींने खरीदी हैं, यह बिटिया को हथियाने या उसे बर्बाद करने की चाल है सब ।”

“तो बड़े बाबू अभी आप घर जाइये, आज बिटिया के गहने मत बेचिये । सुबह देखा जायगा ।”

“सुबह समय कहाँ मिलेगा मटरू, १० बजे रुपया चाहिये ।”

“रुपया मिल जायगा, आप सुबह तक रुकें ।”

राधिका बाबू से आश्वासन पाकर मटरू मन ही मन मन्तव्य स्थिर कर सीधा जेल पहुँचा । मटरू जैसे जेल के पंछी के लिये मुलाकात का समय असमय कैसा ? वह तिकड़म भिड़ाकर सीधा नरेन्द्र की कोठरी के सामने जा पहुँचा । नरेन्द्र को देखते ही मटरू ने कहा—

“दादा अनर्थ हो गया ।”

“क्या हुआ ?”

“बिटिया रानी को बर्बाद होने से बचाइये ।”

“हुआ क्या चचा ?”

“कल चाहिये बारह लाख, हुण्डी भुगताना है, वरना टाट उलट जायगा ।”

“यह हुआ कैसे ?”

“रमेश बाबू के हथकण्डे हैं। सब (धीरे से) रुपया रमेश बाबू के घर है ।”

“और हुण्डियाँ ?”

“वे भी ।”

“अच्छा”, वह कुछ देर तक सोचता रहा । मटरू ने कहा—

“मैं जाऊँगा दादा ।”

“नहीं तुमसे न हो पायेगा, मुझे जाना होगा ।” उसने मतलब का एक संकेत किया । मटरू ने संकेत समझ कर इधर उधर देखा । और ज़रा जंगले से हटकर मुस्कुराकर पहरेदार की ओर देखने लगा ।

पहरेदार ने कहा—“बस वक्त हो गया ।”

“अजी वाह, यह क्या है ?” मटरू ने हँसते हुए दो रुपये पहरेदार की ओर बढ़ाते हुए कहा—“पान तमाखू के लिये जमादार, ज़रा इनका ध्यान रखा करो ।”

पहरेदार ने रुपया टेंट में रखते हुए कहा—“फिक्र मत करो बाबू, पर जल्दी करो, जेलर साहेब के आने का वक्त हो रहा है ।”

“बस दो मिनिट” मटरू ने चुटकी बजा कर कहा । फिर नरेन्द्र से कुछ संकेत किया । तब जमादार से कहा—“जमादार, ज़रा इधर आना दोस्त ।” जमादार के निकट आते ही मटरू ने उसे सीखच्चों पर धर मारा । नरेन्द्र ने हाथ बड़ा कर चाभी निकाल ताला खोल डाला । पहरेदार को बन्द कर उसके मुँह में कपड़ा ठूस दोनों वहाँ से चम्पत हुए ।



कैलाश के घर के निकट आकर नरेन्द्र ने कहा—“मगर औज़ार” मटरू ने जेब से एक पुलिन्दा निकाल कर कहा—“यह रहे”

नरेन्द्र ने औजारों की बारीकी से जाँच की। फिर संतुष्ट होकर कहा—“ठीक है, परन्तु हमें अभी कहीं छिप कर बैठना होगा। बारह बजे के बाद....”

“जब रमेश बाबू मीठी नींद के मज़े ले रहे होंगे।” मटरू ने हँसकर कहा। दोनों एक खँडहर में छिप गये। समय होने पर दोनों कैलाश बाबू के घर के पिछवाड़े पहुँचे। नरेन्द्र एक पेड़ पर चढ़ गये। वहाँ से अनायास ही खिड़की की राह घर में घुस गये। सेफ को खोलने तथा रुपये और हुण्डियों निकालने में उन्हें थोड़ा ही समय लगा। वे सकुशल बाहर पहरे पर तैनात मटरू के पास आ गये।

“काम हुआ दादा।”

“हाँ, मगर अब काम मुश्किल है।”

“क्यों ?”

“यह सब सुधा के सेफ में पहुँचाना होगा ।”

“क्या ज़रूरत है, मैं दे दूँगा, बिटिया रानी को ।”

“नहीं यह ठीक न होगा, चलो ।” दोनों मकानों की छाया में अपने को छिपाते हुए सुधा की कोठी के निकट पहुँच गये ।

अबसर पाकर नरेन्द्र कोठी में घुस गया । नोट और हुण्डियाँ सेफ में रख ताला बन्द कर दिया । परन्तु खटका सुन कर सुधा ने उठ कर टार्च की रोशनी फेंकी । उसने एक झलक खिड़की से कूदते हुए नरेन्द्र को देखा । वह अवाक् रह गई । नरेन्द्र का इस समय यहाँ आना उसे किसी भी हालत में सम्भव नहीं प्रतीत हुआ । उसने सेफ के पास जाकर देखा भी, सन्देह की कोई बात नहीं दिखाई दी । वह देर तक पड़ी-पड़ी सब घटनाओं पर विचार करती रही । उसे बहुत रात तक नींद नहीं आई । वह जितना ही विचार करती थी उलझन में पड़ती ही जाती थी । भोर होते-होते उसे नींद आ गई । वह खूब सोई ।

“मुझे जेल लौट जाना होगा चचा ।”

“वाबैला मचेगा ।”

“नहीं, पहरेदार का मुँह बन्द है” और उसने नोटों का एक बंडल दिखाया । फिर कहा—“अब तुम घर जाकर सो रहो चचा, सुबह बिटिया को खबर देना ।”

दोनों दो ओर चल दिये ।

मटरू ने भोर के तड़के ही उठकर राधिका बाबू का द्वार जा खटखटाया । उन्हें भी रात भर नींद नहीं आई थी । वे एक सज्जन और सीधे आदमी थे, तथा सुधा को बहुत प्यार करते थे । आई हुई विपत्ति कैसे टलेगी, इसका कोई कूल किनारा उन्हें नहीं मिल रहा था ।

वे अनमने से दातुन चबाते-चबाते कुछ बड़बड़ा रहे थे। इसी समय हँसते हुए मटरू ने कहा—“सलाम, बड़े बाबू।”

“सलाम-सलाम, कहीं कुछ काम हुआ भाई, कुछ आशा है?”

मटरू ने आँखें नचा कर कहा—“सब हो गया बड़े बाबू, परेशान मत हो।”

“कैसे हुआ भाई, बड़ी बात हुई।”

“भगवान की बड़ी लम्बी बौंह हैं बाबू, अब चलो ब्रिटिया के पास चलें।”

राधिका बाबू झटपट कपड़ा पहन कर मटरू के साथ हो लिये।

सुधा का मुँह सफेद पड़ गया था। मटरू और राधिका बाबू को देखते ही उसने कहा—“इधर मैं कुछ न कर सकी बड़े बाबू, आपका काम हुआ?”

राधिका ने अकचका कर मटरू की ओर देख कर कहा—“यह क्या बात है मटरू।”

“बात सब ठीक है, बड़े बाबू, ब्रिटिया के गहने उन्हें सहेज दीजिये।”

राधिका बाबू ने डब्बा टेबुल पर रख कर कहा—“ये हैं, मगर रुपया?”

“रुपया सब है यार, क्यों बेसब्रे हो रहे हो। रानी ब्रिटिया, जरा इधर आओ।” वह सुधा को सेफ के पास ले गया। और बोला—“खोलिये सेफ।”

“तुम्हारा मतलब क्या है मटरू चचा।”

“तुम सेफ तो खोलो रानी ब्रिटिया।”

“आप हँसी मत कीजिये मटरू चचा, इस वक्त।”

“रानी ब्रिटिया, सेफ खोलिये तो।”

“सेफ में क्या रुपये ब्याते हैं?”

“भगवान की लम्बी बॉह हैं, सब कुछ हो सकता है।”

सुधा ने अनमनी हो सेफ खोला। यह देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि सेफ में नोटों के गटर भरे पड़े हैं। हुण्डियाँ भी उसी में सब हैं।”

सुधा का सिर चकरा गया। उसने कहा—“यह क्या हुआ?”

मटरू ने खिलखिला कर कहा—“जो होना चाहिये वही हुआ, आप रुपया देकर राधिका बाबू को तो चलता कीजिये, और बात पीछे होती रहेंगी।”

राधिका बाबू ने रकम और हुण्डियाँ सहेजते हुए कहा—“यह तो हुण्डियाँ भी सब है।”

मटरू ने हँस कर कहा—“जी हों, यही तो करामात है, समझ लीजिये, हुण्डियों सब भुगतान हो गईं।”

“भुगतान हो गईं?”

मटरू ने लापरवाही से हुण्डियाँ समेट कर राधिका बाबू के हाथ में देते हुये कहा—“लीजिये, सम्हालिये इन रही कागजों को। और जाइये आफिस। बिटिया को नहाने खाने दीजिये।”

राधिका बाबू ने हुण्डियों पर एक नजर डाल कर सिर खुजाते हुए कहा—“तो फिर अब रुपयों की ही क्या ज़रूरत रह गई?”

“परन्तु रकम आप लेते जाइये।” राधिका बाबू हुण्डियाँ और रकम लेकर आफिस चल दिये। सुधा ने कहा—“मटरू चचा, यह सब कैसे हुआ?”

“शतरंज की एक बाज़ी हुई बिटिया।” मटरू ने हँस कर कहा।

सुधा ने कुछ अटकते हुए कहा—“मैंने नरेन्द्र को रात देखा था, क्या यह भ्रम था?”

“नहीं बिटिया, दादा आये थे।”

“कैसे?”

“यह उन्हीं से पूछ लेना, अब मजे में नहाओ खाओ । मैं जाता हूँ ।”

“नरेन्द्र बाबू इस वक्त कहाँ हैं ?”

“वहीं जहाँ रखे गये थे ।” मटरू ने जाते-जाते कहा ।

“फिर मैंने जो देखा वह स्वप्न था या सत्य ।”

“सत्य ! मैं जाता हूँ ।” मटरू तेजी से कोठी से बाहर चला आया ।
सुधा परेशान खड़ी रह गई ।



कैलाश बाबू मज़े से अपने बैठके में बैठे अच्छी तरह से रज़ाई लपेटे, मुँह में सटक दबाये खमीर का धुँआ उड़ा रहे थे। तमाम कमरे में सुगन्ध फैली थी। जैसे उनके मुखारविन्द से बहिर्गत धुँआ दाँवपैच खाता हुआ ऊपर आकाश को जाता हुआ अलोप हो जाता था वैसे ही कैलाश बाबू के मनोभाव भी बाँसों उछल रहे थे। आज उनकी मनोकामना पूरी होने का दिन था। वे बहुत खुश थे। उनकी दृष्टि कभी अपनी गङ्गाजमनी काम की कीमती चॉदी की गुड़गुड़ी पर और कभी कमरे में फैले धुँये पर नृत्य कर रही थी। वे मन ही मन कह रहे थे—“अब मार लिया है।”

रमेश बाबू सिर से पैर तक बढ़िया सूट डाटे बेचैनी से टहल रहे थे। उन्होंने आज ब्लू सूट धारण किया था जिसपर गहरे लाल रङ्ग की टाई अजब छटा दिखा रही थी। उनके चेहरे पर हिंसा और व्यग्रता

की रेखाएँ स्पष्ट दीख रही थीं । अन्ततः उन्होंने हाथघड़ी पर दृष्टि डाल कर कहा—

“अब तो दस बज रहे हैं बाबू जी ।”

कैलाश बाबू ने एक कश खींच कर कहा—“तो और दस मिनिट बीत जाने दो, क्या परवाह है ? फन्दा तो हाथ ही में है, फन्दा खींचा और खेल खत्म ।”

“अब दस मिनिट बर्बाद करने से क्या होगा ? जाते भी तो आधा घण्टा लग जायगा ।”

“सो लग जाय, जान तो अब बचती नहीं ।”

“कल वह दिन भर पावनेदारों के द्वार-द्वार फिरी है ।”

“इससे क्या बनता है ? फिरा करे, इतना रुपया उसे मिलेगा कहाँ से ? एक बार मजा चखे कैलाश चन्द्र के अपमान करने का । हुँह, कल की छोकरी हमारे मुँह लगेगी ?”

उन्होंने नाल मुँह से लगाकर कश खींचा ।

“लीजिये, अब दस मिनिट भी बीत गये ।” पिता पुत्र दोनों ने कमरे की बड़ी घड़ी पर दृष्टि डाली । “अब देर का क्या काम है ?”

“कुछ भी नहीं । लो चाभी, निकालो ।” कैलाश बाबू ने तकिये के नीचे से चाभी निकालकर पुत्र को दी और हुक्का पीने में तल्लीन हो गये ।

रमेश ने सेफ खोला । और एक चीख उसके मुँह से निकल गई । वह चौंक कर दो कदम पीछे हट गया ।

“क्या है रे ?”

“हमारे सातो पुरुखों का श्राद्ध हो गया बाबूजी”, रमेश सिर पकड़ कर वहीं बैठ गया ।

“क्या बकता है बे”, कहते हुए कैलाश बाबू हुक्का छोड़ उछल कर सेफ के पास जा पहुँचे । उन्होंने देखा—“सेफ में भाड़ू लगी थी । वह साफ़ थी ।”

“हाय, यह क्या हुआ रे ?” वे कपड़े नोचने लगे । रमेश बदह-वास से बाप का मुँह ताकता रहा । कुछ देर में स्थिर होकर कैलाश ने कहा—“यह अगर चोरी है तो गजब की चोरी है, लेकिन....” उसने चारों तरफ देखा—“कुछ अक्ल काम नहीं करती ।”

“क्या पुलिस में खबर दूँ ? हाय लुट गये हम ।”

“पुलिस पूछेगी, यह रकम कहाँ से आई तो क्या जबाब देंगे ? अरे, सब खत्म हुआ, बस सब खत्म ।”

“बाबूजी, यह सब आप की गफलत का नतीजा है ।”

“तू अब तो यह कहेगा ही । अपनी बदमिजाजी को नहीं देखता । लाख कहा—जरा धीरज और नमी से काम ले । लड़की पढ़ी-लिखी और पैसे वाली है, पर तेरी ऐंठ गई ही नहीं, अब ढो टोकरी ।

“हाय मैं लुट गया, अब क्या होगा बाबू जी ?”

“कुछ नहीं हो सकता । कुछ नहीं हो सकता ।”

कैलाश बाबू पागल की भाँति बाल नोचने लगे । रमेश बैठ कर बालक की भाँति रोने लगा । उनके लिये आज का दिन सबसे मनहूस दिन था ।

२४

मटरू से सब बातें सुन कर सुधा कुछ देर सक्ते की हालत में बैठी रही। फिर उसने कहा—“इतना साहस किया उन्होंने?”

“दादा के लिये क्या मुश्किल, पर अफ़सोस इस बात का है कि वह कागज़ उन्हें सेफ़ में नहीं मिला।”

“वह बहुत ज़रूरी चीज़ है?”

“जिसके लिये उन्होंने खून किया, जिसे लाखों रुपयों से भरे सेफ़ से भी अधिक हिफ़ाजत से छिपा रक्खा गया है वह जरूर ही बहुत कीमती चीज़ है। हो सकता है उस कागज़ से उनकी जान और इज़त सभी का खातमा हो जाय।”

“ऐसा भी कुछ हो सकता है?”

“ज़रूर-ज़रूर हो सकता है।”

“तो वह कागज़ उनसे लेना होगा।”

“तभी दादा का छुटकारा भी होगा।”

सुधा ने अधीर हो, डबडबाई आँखों से मटरू को ताकते हुए कहा—“चचा, तुम कुछ करो, चाहे जितना भी रुपया खर्च हो जाय चिन्ता मत करो।”

“कागज़ मिल जायगा बिटिया रानी।”

“कब?”

“आज ही, कल तो दादा का मुकदमा है, उसमें उस कागज़ की सख्त ज़रूरत है।”

“कैसे मिलेगा?”

“केसर बहिन उसे आज प्राप्त करेगी। आज उसने रमेश बाबू को बुलवाया है। अब मैं जाता हूँ।”

मटरू के चले जाने पर सुधा बड़ी देर तक इसी सम्बन्ध में विचार करती रही। सारा गोरखधन्धा उसकी समझ में नहीं आ रहा था। वह परेशान थी, किन्तु किसी भी मूल्य पर नरेन्द्र को छुड़ाने पर आमादा थी।

सुधा इसी उन्नेड़ बुन में लगी थी कि कैलाश बाबू छड़ी टेकते कमरे में चले आये। आते ही बोले—“पगली बिटिया, खबर भी नहीं मेजी? मैं भी तो कहूँ क्या बात है, तो सब कजिया निबट गया न?”

सुधा ने हँस कर कहा—“जी हाँ चाचाजी, बैठिये आप, ऐसा भ्रमेला ही क्या था? कुछ डुगिडियाँ थीं सो राधिका बाबू ने भुगतान कर दीं।”

“यह बुद्धा जब तक जिन्दा है तुम्हें क्या चिन्ता? जगदम्बा बाबू—हो हो हो हो”, उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और भाव मग्न हो गये।

सुधा ने मन की विरक्ति छिपा कर कहा—“चाय मँगाऊँ चाची जी।”

“नहीं बिटिया, आज मेरा उपवास है, सुना तो भागा आया । भला बिटिया किसी दिक्कत में पड़े और मैं स्थिर बैठा रहूँ ? क्या कहेंगे स्वर्ग में जगदम्बा बाबू देख कर ?”

सुधा ने जैसे उनकी बात ही नहीं सुनी । उसने कहा—“नाहक तकलीफ की आपने चाचा जी, हॉ इधर कई दिन से रमेश बाबू नहीं दिखाई दिये ।”

“भेज दूँगा, तबियत जरा खराब है, अच्छा चलूँ ।”

वे लाठी टेकते-टेकते बाहर निकल गये ।



आज केसर ने ठाठ का शृङ्गार किया था, वह पास बैठी हुई, कैलाश बाबू को हँस-हँसकर शराब पिला रही थी। परन्तु उसकी हँसी में एक अव्यक्त घृणा और विरक्त छिपी थी। यह अनायास ही देखा जा सकता था। परन्तु कैलाश बाबू अपने मोटे शीशे के चश्मे से वह सब नहीं देख पा रहे थे। वे प्रसन्न भी न थे। परन्तु शराब अन्धाधुन्ध पी रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके भीतर का रौतान इस समय खूब जाग रहा था। उन्होंने लबालब भरा शराब का गिलास भीकर कहा—

“तुम्हारा हुक्म न टाल सका, इसलिये आना पड़ा, वरना आज मैं कभी न आता।”

“क्यों ? आज क्या बात थी ?”

“ऐं, बात ? बात कुछ नहीं, यों ही, हों आज किस लिए बुलवाया।”

केसर ने शराब का गिलास बढ़ाते हुये एक कटाक्षपात किया

और कहा—“आप तो जानते ही हैं कि आज मेरा जन्म दिन है, आप हर साल ही आते हैं, आज भी आना पड़ा। आज के दिन तो मैं आपको छोड़ और किसी की सेवा करती नहीं।”

“ऐ ! हाँ ! हाँ ! ठीक”, उसने शराब को गले से उतारते हुए कहा—“लेकिन केसर, मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ, जान से भी ज्यादा चाहता हूँ।”

केसर ने लजा का अभिनय करते हुए कहा—“जाइये, कैलाश बाबू, भला आपने मुझे कभी कुछ दिया ?”

“ओह, इसमें क्या ? जो माँगो सो, किन्तु अफसोस आज मैं लुट चुका हूँ, पर भी एक चीज मेरे पास है।”

“सच ?” केसर ने शराब देते हुए कहा।

“सच नहीं तो क्या झूठ”, उसने एक बारगी ही प्याला मुँह में उँडेल लिया। फिर भीतरी कपड़े की जेब से निकाल कर एक कागज दिखाते हुए कहा—“यह देखो”, उसने तुरन्त ही वह कागज फिर उसी तरह रख लिया।

केसर ने हँसकर शराब देते हुए व्यंग से कहा—“यह क्या है ? वाह, मैंने समझा कोई जड़ाऊ गहना निकाल रहे हैं।”

“इसमें एक हजार जड़ाऊ गहने खरीदने की ताकत है, समझीं।” कैलाश बाबू ने तैश में आकर कहा।

केसर हँस पड़ी। उसने कहा—“समझ गई, यह जरूर किसी शाह साहेब का ताबीज है।”

कैलाश का माथा शराब ने गर्म कर दिया था। उसने अपने हाथ से शराब उँडेलते हुये कहा—“बेवकूफ औरत, ताबीज नहीं है।”

“तो दिखाओ क्या है ?”

“तू क्या समझ सकती है, अच्छा हुआ—आज इसे सेफ में नहीं रक्खा, नहीं तो चोर इसे भी ले जाते।”

“चोर ?” केसर ने ऐसा भाव प्रकट किया जैसे वह बहुत भयभीत हो गई हो ।

“हाँ भाई चोर, कल मेरे घर में चोर घुस गए, सब मालमत्ता लूट ले गए । केवल यही एक चीज़ रह गई ।”

“हाय, हाय, लेकिन जब सब माल-मत्ता ही चला गया तब इस कागज से क्या होगा ।” केसर ने बहुत ही व्यग्रता और चिन्ता प्रदर्शित करके कहा ।

कैलाश ने डाटकर गिलास भरा और गटगट पीकर कहा—“इसके जोर से सब लौट आयागा ।”

केसर ने कैलाश के गले में बाँह डाल कर कहा—“देखूँ क्या ?” उसने उनके भीतरी वस्त्र की जेब में हाथ डाल कर वह कागज़ निकाल लिया और उसे उलट पुलट कर देखने लगी । इसी क्षण मटरू ने पीछे से आकर लपक कर कागज़ छीन लिया ।”

“अरे दो भाई, देखने दो ।” केसर ने कहा ।

परन्तु कैलाश ने पिस्तौल तान कर कहा—“कागज इधर दे ।”

परन्तु मटरू ने तनिक बगल में हट कर एक लात कैलाश की पीठ में जमाकर कहा—“यह ले ।” लात खाकर कैलाश बाबू फर्श पर छुड़क गये, पिस्तौल गिर कर दूर जा गिरा । मटरू ने केसर की मदद से उसके हाथ पाँव बाँध कर एक कोठरी में बन्द कर उस पर ताला जड़ दिया ।



अदालत का कमरा ठसाठस भरा था। शहर में इस खून के मुकदमें की काफी चर्चा थी। सब प्रमाण नरेन्द्र के विरुद्ध थे। उसका पिछला रेकार्ड भी बहुत खराब था। नरेन्द्र पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल बैठा था। सुधा दर्शकों में बैठी बेचैनी से देख रही थी। उसका चेहरा सफेद हो गया था।

जज ने काली टोपी पहनी और नरेन्द्र को मृत्यु दण्ड सुनाने को खड़ा हुआ। इसी समय अदालत के बाहर बहुत शोर गुल उठा। केसर और मटरू कैलाश को धकेलते हुये अदालत में ले आये। उसकी दशा पागल के समान हो रही थी। उसने अपने को हत्यारा स्वीकार किया। नरेन्द्र और केसर चश्मदीद गवाह थे। नरेन्द्र को रिहा कर दिया गया। सुधा मूर्छित होकर नरेन्द्र के वक्त पर गिर पड़ी।

×

×

+

×

यथासमय धूमधाम से सुधा का नरेन्द्र से विवाह हो गया । विवाह से प्रथम उसने अपना वंश परिचय और जेल जाने के कारणों पर भी प्रकाश डाला ।

सुधा ने देखा—वह एक साहसी वीर त्यागी और उच्च वंश का युवक है । उसे पहिले भी अपने पिता के अपराध के लिये जेल जाना पड़ा था ।

मटरू ने विवाह में खास पार्ट लिया । सब मजदूरों ने अपनी-अपनी टोली बना कर राग रङ्ग मनाया । सबके अंत में मटरू की पत्नी ने खूब ओखें मटका-मटका कर नाचा ।

यथावसर एकान्त पाकर नरेन्द्र ने सुधा से कहा—“अब ?”

“अब कुछ नहीं ।”

और वह उसके वक्ष में छिप गई ।

समाप्त



